मीठे प्रवचन- 2

"कदम मंजिल की ओर"

''प्रवचनकार''
एलाचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

प्रकाशक:
श्री सत्यार्थी मीडीया
रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा
फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

ॐ ह्रीं नमः

द्वितीय संस्करण : अक्टूबर 2014
प्रतियाँ : 2,000

मीठे प्रवचन- 2

एलाचार्य मुनि वसुनंदी

मंगलाशीष:
प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती दि. श्वेतपिच्छाचार्य श्री १०८ विद्यानंद जी मुनिराज

श्री सत्यार्थी मीडीया प्रकाशक
रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा
फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

मुद्रक :जैन रत्न सचिन जैन ''निकुंज''
मो. 9058017645

प्रस्तुत पुस्तक में मुद्रित समस्त सामग्री, आवरण पृष्ठ, चित्रादि के सम्बन्ध में प्रकाशक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। इसके किसी भी अंश को पूर्व में बिना लिखित अनुमति के मुद्रित करना या करवाना, कॉपीराइट नियमों का उल्लंघन होगा, जिसका सम्पूर्ण दायित्व उन्हीं का होगा और हर्जे – खर्चे के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे ।

रुपये 100/-

''सम्पादकीय''

आर्यिका गुरूनंदिनी

यदि मार्ग में तीर के निशान, मील के पत्थर या सांकेतिक पट्टिका लगी हो तो पथिक को अपने गंतव्य तक पहुँचने में आसानी हो जाती है। प्रस्तुत कृति 'मीठे प्रवचन' प्रवचनांश भी भव्य जीवों को आत्म कल्याण में, मोक्ष मार्ग में सदैव सहयोगी सिद्ध होगी ।

यदि छोटे बालक को चलते समय माँ की अंगुली पकड़ में आ जाये तो वह बालक बार - बार नही गिरता, वह अंदर से स्वकीय साहस को जाग्रत कर आगे चलने लगता है। प्रस्तुत कृति भी भव्य जीवों के धर्मानुराग व वैराग्य के पोषण में माँ की ऊँगली की तरह उपयोगी सिद्ध होगी ।

यदि किसी नाविक को नाव खेते समय मार्ग दर्शन देने वाला तथा प्रकाश देने वाला साथी मिल जाये, एवं हवा का रुख व पानी का बहाव भी उसके अनुकूल मिल जाये तो नाविक शीघ्र नदी के तट को प्राप्त कर लेता है। इसी तरह प्रस्तुत कृति भी भव्य जीवों को भवतीर तक पहुँचाने में वरदान सिद्ध होगी ।

यदि किसी नवोढ़ा बहु को वात्सल्य से पूरित सासु माँ का मार्ग दर्शन और सहयोग मिल जाये तो वह नवोढ़ा बहु कुशल गृहणी (पाचिका) बन सकती है। इसी तरह आत्म हितैषी स्वाध्याय प्रेमियों के लिए प्रस्तुत कृति सासु माँ वत् (उसी प्रकार) कुशल मार्ग दर्शिका सिद्ध होगी ।

प्रस्तुत कृति पहाड़ की चोटी पर चढ़ने वाले के लिए सीढ़ियों की तरह से अमूल्य वरदान स्वरूप है। बिना सीढ़ियों के पहाड़ पर चढ़ना दुःसाहस होता है, दुर्गम मार्ग पर हर एक व्यक्ति नहीं चल पाता उसी प्रकार मोक्षमार्ग में हर वैरागी का समीचीनता से चल पाना कठिन है, गुरुदेव के मार्ग दर्शन रूपी सीढ़ियों से मार्ग व मंजिल सहज साध्य हो जाती है। ये 'मीठे प्रवचन' भव में भ्रमण करते हुए संसारी जीवों को मार्ग दर्शक की तरह हैं ये 'मीठ प्रवचन' भव तापों से संतप्त प्राणियों को कल्पवृक्ष की शीतल छाँव की तरह से हैं ये 'मीठे प्रवचन' जन्म जरा - मृत्यु जैसे महारोगों की परमौषधि रूप हैं, ये 'मीठे प्रवचन' विषय - कषायों की दलदल में आकण्ठ डूबे व्यक्तियों को निकालने के लिए पनडुब्बी के रूप में हैं, ये 'मीठे प्रवचन' संसार में पुण्य - पाप रूप कर्मों के फलों को भोगने से क्लांत हुए जीवों को चिर विश्राम हेतु आत्मोत्थान की पगदण्डी स्वरूप हैं, ये 'मीठे प्रवचन' पाप रूपी

दिवाकर की संतृप्तमान रश्मियों से झुलसे हुए व्यक्तियों को शीतल सुधांशु की तरह शीतलता करने वाले हैं, ये 'मीठे प्रवचन' तन के ज्वर का परिहार करने वाले शीतल मलयागिरि के चंदन के लेप की तरह हैं, ये 'मीठे प्रवचन' संसार की प्रतिकूलता रूपी बदबू से परेशान पुरुषों के लिए पुष्पवाटिका सम हैं, ये 'मीठे प्रवचन' चिर काल से क्षुधातुर व्यक्तियों के लिए यथेष्ट मिष्ट स्वादिष्ट दिव्य भोजन की तरह हैं, ये 'मीठे प्रवचन' ग्रीष्मकालीन तृषा से पीड़ित आकुलता से युक्त शुष्क कंठ वाले प्राणियों के लिए अमृतोपमा दिव्य क्षीर सागर के नीर की तरह हैं, ये 'मीठे प्रवचन' धर्म मार्ग में चलने वाले प्रारम्भिक पथिक (शिशु) बालक के लिए तीन पहियों की गाड़ी की तरह हैं, ये 'मीठे प्रवचन' किसी विकलांग या अति वृद्ध व्यक्ति रूपी मोक्ष मार्गी के लिए वैसाखी की तरह हैं ये 'मीठे प्रवचन' ज्ञान निधि से रहित व संयम रूपी साहस से विहीन व्यक्तियों के आत्म ज्ञान रूपी निधि से युक्त है ये 'मीठे प्रवचन' कायर योद्धाओं रूपी अक्षम मोक्षमार्ग के जिज्ञासुओं के लिए तलवार व ढाल की तरह से हैं, ये 'मीठे प्रवचन' जिनत्व को निजत्व में प्रकट करने हेतु आत्मा की श्रद्धा को सम्यक् बनाने में प्रशस्त कारण भूत हैं, ये 'मीठे प्रवचन' धर्म की ज्योति से रहित आत्मोपकारी व परहित में निरत रहने की जिज्ञासा से सहित प्राणियों के लिए दिव्य ज्योति की तरह हैं ये 'मीठे प्रवचन' तीव्र गति से चलने वाले वाहन की तरह से न पढ़कर चूसने वाली गोली की तरह से चिंतन करते हुए पढ़ें तभी यह ज्यादा लाभकारी होंगे । कृतिकार ने अपने मौलिक चिंतन को शब्दों की पोषाक पहना कर हमारे सामने प्रस्तुत किया है। भव्य जीव ही इससे समुचित लाभ उठाने में समर्थ होंगे हमारा ऐसा विश्वास है। प्रस्तुत प्रवचनांश रूपी कृति का संपादन करने का सौभाग्य गुरु की महाकृपा दृष्टि से मुझ अकिंचन को प्राप्त हुआ है, इसमें जो कुछ भी अच्छाईयाँ हैं वे पूज्य गुरुदेव जिनदेव जिनाम्बे की हैं, त्रुटियाँ सब मेरी ही मानें तथा आगे संशोधन हेतु सुझाव (आप जैसे सुधी महानुभाव) देकर हमें अनुग्रहीत करें । कृति का स्वाध्याय करते समय गुणग्राही दृष्टि से आद्योपांत पढ़ सुकृति, सदाचारी, संयमी, संतोषी, समता स्वभावी, जिनभक्त, संतोषोपासक, विनयशील व विवेकी (हित मार्ग ग्राहक व अहित मार्ग परिहारक) बने, ऐसी मेरी शुभ भावना है। प्रस्तुत ग्रंथ के प्रवचनकर्ता परम पूज्य गुरुदेव एलाचार्य श्री वसुनंदी मुनि महाराज जी के चरणों में सिद्ध, श्रुत व आचार्य भक्ति सहित बारम्बार नमोस्तु - नमोस्तु - नमोस्तु, जिनकी कृपा दृष्टि से हमें ये अमृतबिंदु प्राप्त हुए ।

"सर्वे भवंतु सुखिन"

श्री शुभमिति आसोज सुदी 11 शुक्रवार
वीर नि.सं 2537, 7 अक्टूबर 2011
श्री दि. जैन मंदिर - इमली फाटक
ज्योति नगर जयपुर (राज.)

गुरुपद चरण चंचरीका
संघनायिका - स्वसंघ प्रवर्तिका
आर्यिका गुरूनंदिनी
ज्योति नगर - जयपुर (राज.)

अनुक्रमणिका

रत्नत्रय का परकोटा 7
आत्मा का शत्रु कौन? 8
कांटों में भी गुलाव कीचड़ में भी कमल 9
आत्मा ही आत्मा का गुरु है 10
वृद्धों को सलाह 11
आत्म शांति की राह 12
फल को ग्रहण करें 13
कीचड़ के कीड़े बनो 14
कमलासन ही क्यों? 15
तुम रात्रि में क्यों जागते हो? 16
जो जाग जाते है, उनके दुःख भाग जाते है 17
सुख - दुःख दाता 18
चार अनुयोग में श्रेष्ठ कौन? 19
आ जाओ निज घर में 20
हवा - दवा - दुआ 21
वैरागी कौन? 22
प्रवचन 23
आवश्यकता किस बात की? 24
अंतर्दृष्टा व आत्मज्ञाता बनो 25
लंगोट किसे? 26
जीवन की औकात 27
माला और ताला 28
कुद्ध और वृद्ध 29
उत्साहित मन 30
ऐसी संगति क्यों? 31
उसके मरण का सोच क्या? 32

मुस्कराते रहो 33
प्राकृतिक रूप दिगम्बर संत 34
मयूर पंख 35
अपने - अपने कर्मो का फल 36
कुछ कार्यकर्ता ऐसे भी 37
तुम भले ही भूल जाओ 38
पहले तोलो फिर बोलो 39
दीपक के प्रकाश में 40
यदि धारण ही गलत हो 41
फलों के फल (शब्दाशय) 42
संग्राम हो तो संघर्ष भी 43
सोच अपनी - अपनी 44
नीयत गर साफ है तेरी 45
अंतिम परीक्षा के अंतिम क्षण 46
सद्विवेक का छाता 47
सीधापन नहीं तो सीतापन ही सही 48
एक धर्म के काज 49
टेढ़ापन तेरापन नहीं 50
तब चमकेगी आत्मा 51
ढाँको तो सही 52
पापोदय में मित्र भी शत्रु 53
पंच शुद्धि 54
नयवाद पगदण्डी है 55
कैसा हो शासक? 56
मात्र चार सूत्र 57
परमात्म पद की फसल 58
शांति खुद में 59
माँ के मायने 60

निश्चय है माँ की साधनावत् 61
चरमदशा ही परमदशा 62
वर्तमान से वर्द्धमान 63
बचाओ अपने आप को 64
करो सहायता कभी अपनी भी 65
मंदिर कब बनेगा 66
आशीर्वाद का प्रसाद 67
स्त्री के विभिन्न रूप 68
एक भी उदाहरण नहीं मिला 69
खुद का शहंशाह 70
हँस तो सकता है रो नहीं सकता 71
जैसा चाहों वैसा करो 72
दर्पण में अर्पण 73
समाज के दर्पण 74
शक का इलाज नहीं 75
साक्षी भाव 76
काश ऐसी व्यवस्था पीछे भी 77
पापोदय में शांति से धर्म ध्यान करो 78
चुप रहना भी सीखिये 79
हमेशा अपनी शर्तो पर नहीं 80
हम जरा बदल लें वृत्ति नहीं प्रवृत्ति भी 81
पचपन से ज्यादा प्रभावी बचपन 82
मित्र कैसा हो? 83
हृदय के भाव चेहरे पर 84
दूसरों की मात्र बुराई नहीं अच्छाई भी 85
अपनी उपेक्षा क्यों? 86
बिना दान दिये तुम भिखारी 87
प्राकृतिक स्वरूप को पाने के लिए प्रकृति की साथ जिओ 88

मृत्यु की चिंता क्यों 89
मरण को सुधारना है तो जन्म को सुधारो 90
जोड़ने व जुड़ने का अभियान चलायें 91
बहिरंग से नहीं अंतरंग से समृद्धि हो 92
पुण्यात्मा कौन? 93
यथा कारण तथा कार्य 94
मूर्ख व विद्वान् 95
माँगना नहीं त्यागना सीखो 96
खतरनाक है अहंकार 97
चिकनाई में फिसलन 98
आदमी, पुरुष, मानव व मनुष्य 99
मर्दनं गुण वर्धनं 100
स्व स्थान शोभते 101
जीवन को तीर्थ बनाओ 102
अधिवक्ता नहीं न्यायाधीश बनो 103
धन तेरस को दान व ध्यान से कमाओ धन्य तेरस 104
कोप भवन अलग क्यों 105
भारतीय परिवार - मानो रत्नों का हार 106
अतिथि के समक्ष 107
वस्तु नहीं कोण बदलो 108
मुर्दे कफन नहीं बदलते 109
जो खुद के लिए चाहते हैं 110
न देर न अंधेर 111
नारी हरि की जननी भी 112
पढ़ो,बढ़ो,चढ़ो,आत्मा से जुड़ो 113
क्षितीश्वर वही जो क्षिति सा क्षमाशील 114
मात्र लिखो मत अंदर में लखो भी 115
ऐसी कोई मशीन नहीं 116
अशन व आसन में आसक्ति न हो 117

1

''रत्नत्रय का परकोटा''

पहले व्यक्ति चोर और डाकुओं से बहुत भयभीत रहता था किंतु आज आतंकवादियों का भय सर्व सुखों को नष्ट करने हेतु बना हुआ है, सर्व सुविधाओं से युक्त व्यक्ति भी आतंकवादियों का नाम सुनते ही काँप उठता है, वह आतंकवादी कौन है? महावीराष्टक स्तोत्र में लिखा है - 'महामोहातंक' मोहनीय कर्म ही सबसे बड़ा आतंकवादी है, यही संसार भ्रमण व दुःखों का मूल हेतु है, यही सर्व पापों का बाप है, इनसे बचो। विषय वासना रूपी चोरों से तथा योग त्रय की अशुभ प्रवृत्ति रूपी उठाईगीरों से भी सावधान रहना चाहिए। रत्नत्रय रूपी निधि की रक्षा करो तथा सम्यक्श्रद्धा, सज्ज्ञान व सुव्रत रूपी परकोटे से स्वात्मा की रक्षा करो।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

2

''आत्मा का शत्रु कौन''

कोई कहता है मेरा पड़ोसी ही मेरा दुश्मन है, कोई कहता है मेरा भाई ही मेरा दुश्मन है, कोई कहता है मेरा जीवन साथी ही मेरा दुश्मन है, कोई कहता है कि मेरा पिता ही मेरा दुश्मन है, कोई कहता है मेरा पुत्र ही मेरा दुश्मन है, कोई कहता है कि मेरा मित्र ही मेरा दुश्मन है, कोई अपने चाचा, मामा, ताऊ, मौसा, बुआ, चाची, बेटी, पुत्रवधु, सास या ससुर को अपना दुश्मन कहते हैं। कोई विपक्षी दल या दूसरी पार्टी को अपना दुश्मन मानते हैं, एक देश वाले दूसरे देश को अपना दुश्मन मानते हैं किन्तु हमारा मानना है यह है कि (१) मिथ्यात्व (उल्टी मान्यता) (२) अज्ञान (गलत धारणा) (३) असंयम, (कदाचार व अनाचार रूप प्रवृत्ति) ये तीन ही हमारे शत्रु हैं इनसे सदा बचकर रहो । दिगम्बर जैनाचार्य संमतभद्र स्वामी कहते हैं –

"पाप मराति धर्मो बंधुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन् ।"

पाप अराति – पाप ही मेरा शत्रु है। धर्म बंधु– धर्म ही मेरा बंधु है। इस प्रकार आत्मा में निश्चय करो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

3

''काँटे में भी गुलाब कीचड़ में भी कमल''

कुछ लोग कहते हैं प्रकृति का अन्याय तो देखो फूलों के साथ काँटे लगा दिये, सुन्दर इन्द्रायण फल में कड़वापन, सुन्दर रत्नों में कठोरता, स्वर्ण में निर्ग्रन्थता, गुड़ में सांवलापन, मेघों में श्याम, कुओं को गहरा, अग्नि में धूम, पवन को अस्थिर बना दिया है इत्यादि । उन महानुभावों से मैं कहना चाहता हूँ। संसार में किसी ने कुछ नहीं बनाया, सब सहजोत्पन्न है, जिस वस्तु का जैसा स्वभाव है वह अनादि से वैसा ही है अन्य नहीं हो सकता और न ही अन्यथा । आप अपनी दृष्टि विपरीत करके सुख के स्थान पर दुःखानुभूति करते हुए मात्र पाप का बंध करते रहते हैं। सद्दृष्टि वाला धर्मात्मा पुरुष तो यह सोचता है कि प्रकृति कितनी उदार है उसकी व्यवस्था व्यवस्थित व सम्यक् है। देखो – कठोर इक्षुदण्ड में भी मिठास, कड़वे इन्द्रायण फल में भी सुन्दरता, काँटो में भी गुलाब, कीचड़ में भी कमल, काली लवंग में भी सुगन्धि, सांवले गुड़ में भी मिठास, खारे नमक में भी धवलता, कठोर पर्वतों में भी शीतल जल के झरने, श्याम मेघों में भी जल, जघन्यतम कूपों में भी जल, हवा में भी निः संगता है। हे प्रकृति ! धन्य है तू, तेरी शुद्ध दशा । प्राकृतिक रूप ही तो परमात्मा के समान पूज्य है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

4

''आत्मा ही आत्मा का गुरु है''

अब कोई व्यक्ति धर्म की राह पर चलना चाहे, मन - वचन - काय से धर्म के मार्ग में चले, समीचीन रूप से कर्त्तव्यों का पालन करे तब आत्मा ही आत्मा का गुरु है यदि कोई प्राणी धर्म की समीचीन राह पर न चले या न चलना चाहे तो कोई भी गुरु - मुनि, उपाध्याय, आचार्य, गणधर, श्रुत केवली या तीर्थंकर भी कल्याण नहीं कर सकते । आचार्य आदि परमेष्ठी का निमित्त पाकर भव्य जीव अपना कल्याण करते हैं। कोई तीर्थंकर आदि भी ये नहीं कह सकते कि मैं तेरा कल्याण कर दूँगा या तेरा कल्याण करके, सुधार करके या मोक्ष पहुँचा करके ही रहूँगा । अर्थात् हमारा शाश्वत गुरु तो हमारी आत्मा ही है। व्यवहार में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु ये पाँचों परमेष्ठी ही हमारे गुरु थे हैं और रहेंगे । असंयमी आदि अन्य कोई भी समीचीन व्यवहार मार्ग में गुरु नही हो सकता ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

5

''वृद्धों को सलाह''

जो अपनी वृद्धावस्था को सुखी बनाना चाहते हैं उन्हें वृद्ध अवस्था में चार बातें ध्यान रखनी चाहिए - (१) कौन (२) मौन (३) नौन (४) पौन अर्थात्

(१) कौन - कोना / एकांत प्रिय रहो । बहु - बेटे आदि आपकी बार - बार दखलंदाजी पसंद नहीं करेंगे, बिना पूछे ही आप सलाह दोगे तो अपमानित होना पड़ेगा ।

(२) मौन - कम से कम बोलना कम बोलने से आत्म शक्ति और आत्मशांति की प्राप्ति होती है, सम्यक् मौन व्रत का पालन करने वाले व्यक्ति की वाणी भी प्रभावित होती है।

(३) नौन - नमक अर्थात् भोजन में नमक मिर्च या मीठा आदि की हीनाधिकता की चर्चा किये बिना जैसा मिले वैसा ग्रहण कर लेना क्योंकि अब तुम पराधीन हो, तुम्हें अब अपने अनुकूल नहीं, परिवार के अनुकूल चलना है।

(४) पौन - पवन, अब वृद्धावस्था में पवन वत् निः संग रहो । बहिरंग परिग्रह के साथ अंतरंग परिग्रह भी घटाओं तभी परलोक की यात्रा सुखद हो सकेगी ।

6

''आत्म शांति की राह''

बहिरात्मा की अवस्था छोड़ो अर्थात् आत्मा से अतिरिक्त (शरीर, भवन,वाहन, वस्त्र, आभूषण व धन सम्पत्ति आदि) पदार्थों को आत्म रूप मानने वाली बुद्धि का त्याग करें।

(२) पश्चात् अन्तरात्मा का अवलोकन करें अर्थात् शरीर और आत्मा के भेद को निरंतर देखो आत्मा कभी शरीर रूप (पुद्गलादि रूप) नहीं हो सकती, पुद्गल शरीरादि पदार्थ कभी आत्म रूप नहीं हो सकते ऐसी प्रतीति करना ।

(३) महात्मा जनों की संगति करना, जो यथाजात दिगम्बर संत हैं विषय कषाय आरंभ परिग्रह से रहित, रत्नत्रय की साधना में संलग्न अर्थात् सज्ज्ञान, ध्यान व तप में लीन हैं उनकी सेवा, भक्ति व वैय्यावृत्ति करना ।

(४) परमात्मा के गुणों का चिन्तवन करना - जो चार घातिया कर्मों से रहित अरिहंत परमेष्ठी या द्रव्य, भाव व नौ कर्म रहित सिद्ध परमेष्ठी हैं उनके गुणों का चिन्तवन करना ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

7

''फल को ग्रहण करें''

ज्ञान दर्शन आत्मा का लक्षण है इसके बिना वह कभी रह नहीं सकती, जानना व देखना ही हमारा स्वभाव है। जानते रहो और देखते रहो इसमें आत्मा को कोई हानि नहीं, हानि तो ग्रहण करने से है, संसार के किसी भी पदार्थ को जानने से हानि नही । अरिहंत, सिद्ध परमेष्ठी संसार के सर्व पदार्थों को जानते व देखते हैं, वे इन पदार्थों को न ग्रहण करते हैं न ही उनमें राग - द्वेष ही करते हैं। मिथ्या क्रियायें या अव्रत प्रवृत्ति ही दुःख की, प्रतिकूलता की जननी है, इसलिए अपने ज्ञाता, दृष्टा स्वभाव को जानकर, देखकर उसी स्वभाव में लीन होना यही सर्व सत्संग का,सर्व शास्त्रों के स्वाध्याय का तथा परम परमात्मा की भक्ति का फल है। प्रज्ञ पुरुष फल को ही ग्रहण करते हैं, वृक्षों को नहीं गिनते ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

8

''कीचड़ के कीड़े मत बनो''

पापी प्राणी की तरह कीचड़ का कीड़ा कीचड़ में जन्म लेकर वही कीचड़ में ही मर जाता है। कमल भले ही कीचड़ में पैदा होता है किन्तु वह कीचड़ में लिप्त नहीं रहता, जल का स्तर बढ़ने के साथ - साथ ऊपर उठता जाता है वह जल में भी लीन नहीं होता, इसी तरह धर्मात्मा प्राणी भी संसार में पैदा जरूर होता है किंतु, सत्संगति पाकर धर्म के क्षेत्र में वह आगे बढ़ता रहता है वह विषय वासना की कीचड़ में लिप्त नहीं होता, और न ही संसार से क्षणिक सुखाभास रूपी जल में विलीन होता है, वह तो परमात्मा रूपी सूर्य को देखकर विकसित होता रहता है उसकी संगति में आने वाले साधर्मी रूपी ओस बिंदु भी मोती की तरह प्रतिभासित होती है। अब बताओं तुम क्या बनना चाहोगे कमल या कीचड़ के कीड़े ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

9

"कमलासन ही क्यों?"

"वृक्ष प्रायः करके संसार के सभी देवी - देवता या भगवन्तों के आसन कमलासन ही होते हैं ऐसा क्यों? क्या कभी आपने सोचा है? यदि नहीं तो समझो - कमल के समान ही प्रत्येक व्यक्ति का हृदय होता है। जब हमारा हृदय कमल के समान संसार में अनासक्त, निर्मल, कोमल व दया युक्त होगा तभी वहाँ परम परमात्मा का वास होगा । जिनका हृदय धूम्रपान से श्याम वर्णी या आमिषाहार से अपवित्र, क्रोधादि कषायों से कठोर है तब तक कोई भी परमात्मा - देवी - देवता भगवान् हमारे हृदय में विराजमान नहीं हो सकते । भगवान् को मंदिर में वेदी पर विराजमान करने से पूर्व वेदी शुद्धि व मन्दिर प्रतिष्ठा आवश्यक है तभी जिनबिम्ब प्रतिष्ठा संभव है, उसी प्रकार तन रूपी मंदिर की प्रतिष्ठा शुद्धाचरण से, मन रूपी वेदी की शुद्धि शुद्ध - सात्विक दयामय विचारों से करके ही आत्मा रूपी परमात्मा की प्रतिष्ठा संभव हो सकेगी ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

10

''तुम रात्रि में क्यों जागते हो?''

रोगी-तन के असाध्य रोग से पीड़ित होकर रातभर जागता है, दिन तो जैसे - तैसे व्यतीत हो जाता है किन्तु रात नही कटती, वह तन के रोग सहने में असमर्थ हो तन से ही विदा लेना चाहता है।

(२) भोगी - विषयों में आसक्त हो तृष्णा के रोग से पीड़ित होकर रात्रिभर बहु आरम्भ व परिग्रह के संचय की चाह में रात्रिभर जागता है, दिन तो संग्रह में बीत जाता है और आगे धन की चिंता में जागता है।

(३) वियोगी - अपने प्रियतम या प्रिया के वियोग में वियोगी की रात्रि भी सुख से नहीं बीतती, वह अत्याधिक प्रेम के रोग से तड़पता रहता है। दिन तो नाना व्यक्ति, वार्ताओं व वस्तुओं को देखने से व्यतीत हो जाता है किन्तु रात्रि बहुत लम्बी हो जाती है, तब मन बहलाने के लिए टी.वी देखने के लिए जागता है।

(४) योगी - जो साधक है वह दिन में तो स्व पर कल्याण में संलग्न रहता है व रात्रि में जन्म - जरा - मृत्यु रूपी रोगों से भयभीत हो उसे रात्रि में नींद नहीं आती तब साधना करने के लिए जागता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

11

''जो जाग जाते हैं, उनके दुःख भाग जाते हैं''

संसार में जितने भी प्राणी अपने स्वभाव से, कर्त्तव्य से या सन्मार्ग से विमुख / प्रतिकूल चल रहे हैं वे सब मानों सोये पड़े हैं, कोई मिथ्यात्व की नींद में लीन है, कोई कषायों में बेहोश है, कोई भोगों से आसक्त हुआ बेसुध है, कोई परिग्रह में मूच्छित है, जो कोई भी धर्म ध्यान से दूर है वह सुसुप्त ही है। जब तक सोते रहोगे तब तक रोते रहोगे, सोते - सोते दुःख नहीं मिटेंगे। अब बहुत काल हो गया है तुम्हें सोते हुए, एक बार मेरी बात मानकर या किसी भी भगवान् परमात्मा या गुरु संत महात्मा की बात मानकर जाग जाओ और निः सीम आनंद को पा जाओ क्योंकि जो जाग जाते हैं उनके सम्पूर्ण दुःख क्रमशः भाग जाते हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

12

''सुख - दुःख दाता''

सांसारिक प्राणी दुःख से रहित (संसार में रहता हुआ) नहीं हो पाता, संसार में संरक्षण करने वाले जीव मन, वचन व काय की शुभाशुभ प्रवृत्ति के द्वारा शुभाशुभ कर्मों का आस्रव करते ही हैं। जो जीव कर्मों का बंध करता है वही जीव उन कर्मों का भोक्ता होता है। यदि यह जीव अशुभ परिणाम करता है तो उसे पाप कर्मों का बंध होता है, शुभ परिणामों से पुण्य कर्मों का बंध होता है, शुद्ध भावों से संसार वर्द्धक कर्मों का बंध नहीं होता है यद्यपि शुद्धोपयोगी मुनिराजों को भी पुण्य का बंध होता है। पाप कर्मों का फल दुःख ही दुःख है, पुण्य कर्म का फल इष्ट वस्तु की सम्प्राप्ति है जिसे पाकर वह सुख व दुःख दोनों का वेदन कर सकता है। फिर भी निःकांक्ष व निदान रहित पुण्य नियम से भव सुख व परम्परा से शिव सुख का साधन है कहा भी है -

"सुख दुःख दाता कोई न आन,
मोह राग द्विष दुःख की खान ।
निज को निज पर को पर जान,
फिर दुःख का नहिं नाम निशान ।।"

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

13

''चार अनुयोग में श्रेष्ठ कौन?''

तीर्थंकर भगवान् की वाणी चार भागों में विभक्त है - (१) प्रथमानुयोग (२) करूणानुयोग (३) चरणानुयोग (४) द्रव्यानुयोग । चारों ही अनुयोंगो के शास्त्रों का समीचीन स्वाध्याय चिंतन मनन करने से आत्मा का कल्याण संभव है। कोई भी अनुयोग हेय या विशेष उपादेय नहीं है। एक, दो या तीन अनुयोगों को छोड़कर किसी भी आत्मा का कल्याण संभव नहीं अर्थात् असंभव है, इतना ही नहीं आगम के एक अक्षर, शब्द, वाक्य पर श्रद्धा नहीं करने वाला (भले ही शेष सम्पूर्ण द्वादशांग पर श्रद्धा करे) मिथ्यादृष्टि ही होता है। अतः चारो अनुयोगों का श्रद्धान, ज्ञान, चिंतन व ध्यान आत्म कल्याणार्थी को आवश्यक है। चारों अनुयोगों में जिन वचन वैसे ही निबद्ध है जैसे गाय के चारों स्तनों में दूध व पुष्प की चारों पांखुड़ियों में गंध निबद्ध है। जैसे अनंत चतुष्टय में सभी का समान महत्व है, जैसे पलंग / चौकी / कुर्सी के चारों पायों का समान महत्व है, चार पहिये वाली गाड़ी में पहियों का, चौपाये के चार पैरो में चारों का समान महत्व है वैसे ही चारों अनुयोगों का समान महत्व है। आत्म हितार्थी को कभी भी किसी भी अनुयोग की किंचित् भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

14

''आ जाओ निज घर में''

हम तो कबहूँ न निज घर आये,
पर घर फिरत बहुत दिन बीते नाम अनेक धरायें । हम तो....

ये पंक्तियाँ आपने कई बार सुनी होंगी, कौनसा है अपना घर? और क्यों हम अपने घर नहीं जाते? पर घर में ही क्यों भ्रमण करते रहते हैं? अपने घर जाने का मार्ग क्या है? ये सब जिज्ञासायें आत्म हितार्थी के मन में अवश्य ही पैदा होती हैं, जब तक ये जिज्ञासायें उत्पन्न न हो तब तक आत्म कल्याण असंभव है।

"ज्ञान शरीरी त्रिविध कर्म मल वर्जित सिद्ध महंता ।
ते हैं निकल अमल परमातम भोगें शर्म अनंता ।।"

शाश्वत सिद्ध अवस्था की प्राप्ति ही अपना घर है, संसार के पदार्थों में, राग - द्वेष में लीन होकर हम अपना कल्याण नहीं कर पाते । श्रावक धर्म की पगदण्डी या श्रमण धर्म का पालन करना राजमार्ग है, इसे स्वीकार किये बिना अपने घर जाने का मार्ग असंभव है। यदि आप मुझे अपना मानते हो तो मेरी इतनी सी बात स्वीकारो कि पर घर (नाना पर्यायों में जन्म - मरण करना) में भटकना छोड़कर स्व घर जाने हेतु रूप शक्ति अनुसार संयम को स्वीकार करो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

15

''हवा - दवा - दुआ''

जीवन में हवा का बड़ा महत्व है, बिना हवा के पचास लाख की गाड़ी भी बेकार है, बिना श्वांस के सारा जीवन व वैभव शून्य है, मिट्टी है। हवा से ज्यादा महत्वपूर्ण है दवा । जिसके प्राप्त हो जाने पर समस्त रोग नष्ट हो जाते है, बिना दवा के रोगों की श्रृंखला अंतविहीन रहती है इतना ही नहीं वह रोगी को ही नष्ट कर देती है । जन्म - जरा - मृत्यु जैसे महारोगों की निवृत्ति भी धर्म से या जिन वचन रूपी औषधि से ही संभव है, दवा से ही यह आत्मा परमात्मा बन सकती है किन्तु वह दवा भी बिना दुआ के असंभव है जब गुरु की दुआ या गृहस्थ जीवन में माता - पिता की दुआ मिल जाती है तो दवा व हवा भी मिल जाती है और कदाचित् दवा व हवा न भी मिले तब भी वह दुआ जीवन को सफल व सार्थक करने वाली होती है, हवा व दवा जब अपने कार्य करने में असमर्थ होती है तब भी दुआ तीनों का कार्य करने में समर्थ होती है। अतः कभी भी जीवन में हवा - दवा - दुआ इन तीनों में से किसी की उपेक्षा मत करो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

16

"वैरागी कौन?"

जिसके अंतर में आत्म ज्ञान प्रकट हो गया है जिसने निज स्वभाव से, अपने परमात्मा से, अपनी नियति से, प्रकृति से साक्षात्कार कर लिया है, जो सुख - दुःख से परे है, जिसे किसी से भी कोई राग - द्वेष नहीं है जो अनुकूलता व प्रतिकूलता में समभाव रखने वाला हो, जिसने आत्मा व अनात्मा के स्वभाव को जान लिया हो, जो संसार के समस्त सुख व दुःख से विरक्त हो, जो भोग व रोग से विरक्त हो तथा जो तन व अनात्मा से विरक्त हो वही वैरागी है। सर्वस्व त्यागी भी अंतरंग में रागी हो सकता है। आत्मा को जानने व पाने के उपरान्त किसी को पाने व छोड़ने की आवश्यकता ही नहीं रहती ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

17

"प्रवचन"

प्रकृष्ट, प्रमाणिक, प्रभावक, प्रभुकथित, प्रकर्ष का कारण, प्रतिकार से रहित, प्रमेय, प्राकृतिक स्वरूप का उद्घोषक, प्रमाद व प्रमदा का प्रहारक, प्रतिस्पर्धा व प्रदर्शन से रहित, प्रतिष्ठेय व प्रकृत रूप का परिचायक एवं दर्शायक हो ।

व - वध - बंधन से रहित, व्रतों का रक्षक, बनाने की कला सिखाने वाला, वर्द्धमान जीवन का मूल कारण ।

च - चंचलता रहित, चंदन व चंद्र किरण सम शीतल, चरित्र निर्माणक ।

न - नय विवक्षाओं से रहित, निक्षेपादि से सहित, नम्रता से युक्त ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

18

''आवश्यकता किस बात की ?''

"जी आज धन व भौतिक संसाधन जोड़ने की नहीं मानव को मानवता से जोड़ने की आवश्यकता है। आज भवन, सड़क व मानव को तोड़ने की नहीं, पुरानी व नयी मिथ्या मान्यताओं को तोड़ने की, दुराग्रह / हटाग्रह व विषयानुरक्ति के बंधनों को तोड़ने की आवश्यकता है। आज माता - पिता व कुटुम्ब परिवार छोड़ने की नहीं अपितु अपने अंदर विद्यमान मिथ्या धारणा, अज्ञान, असंयम, अशिष्टाचार को छोड़ने की आवश्यकता है। आज पाश्चात्य की ओर स्वयं को, समाज को जोड़ने की नहीं अपितु भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर मोड़ने की, बाह्य जगत से अंतर की ओर मोड़ने की, अंधकार से प्रकाश की ओर तथा अधर्म से धर्म की ओर मोड़ने की नितांत आवश्यकता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

19

''अंतर्दृष्टा व आत्मज्ञाता बनो''

हमें किसी की भौतिक सम्पत्ति से प्रतिस्पर्धा नहीं करना है और न ही भौतिक सम्पत्ति का प्रदर्शन क्योंकि भौतिक वैभव संसार में फँसाता है, हमें अपने स्वरूप की ओर मुड़ने नहीं देता।यदि प्रतिस्पर्धा करनी है तो आध्यात्मिक विद्या में प्रतिस्पर्धा करो, आत्मिक गुणों का प्रदर्शन करो, किन्तु यहाँ भी प्रतिस्पर्धा व प्रदर्शन की क्या आवश्यकता? क्योंकि अंतर्दृष्टा व आत्मज्ञाता तो प्रतिस्पर्धा व प्रदर्शन से दूर ही रहता है। तुम भी आत्म दृष्टा व आत्म ज्ञाता बनो यही विश्वदृष्टा व विश्वज्ञाता बनने का एक मात्र मार्ग है, नियामक उपाय है। इसके बाद संसार की किसी भी वस्तु की तुम्हें आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि तुम्हारे पास पहले से ही सब कुछ है जो तुम्हे चाहिए ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

20

''लंगोट किसे?''

जिनके मन में खोट होती है तो तन पर लंगोट होती है, बाहरी सपोर्ट होती है, उसी के पास वोट होती है। जिनके पास नोट होते है उसी पर चोट होती है जो इन नोट से, सपोर्ट से, वोट से, चोट से, खोट से व लंगोट से रहित है वह होते हैं दिगम्बर, उन्हें अम्बर व अम्बार से क्या मतलब । जब अन्दर में राग की आग ही नहीं तो बाह्य परिग्रह का ईंधन क्यों? भौतिक संसाधनों की आवश्यकता क्या? शिशु और मुनि विकारों से रहित होते हैं इन्हें वस्त्रों की क्या आवश्यकता? ये दिगम्बर ही प्रकृति की धरोहर हैं इनके साथ छेड़छाड़ मत करो दूर से देखकर निर्विकल्पी और निर्विकारी बनो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

21

''जीवन की औकात''

यह संसार बहती हुई नदी की तरह से है और जीवन उस नदी की धारा में बहते हुए पुष्प, पत्र, तिनके, कागज, लकड़ी, मिट्टी, कंकड़ व रजकणों की तरह से है। नदी में चाहे कुछ भी बहता रहे किनारों को नदी से कोई सरोकार नहीं, चाहे वह बहे या ठहरे । जो किनारे खड़े हैं वे बह नहीं सकते, जो बह रहे हैं वे ठहर नहीं सकते । एक किनारा निगोद रूप कल - कल भूमि है तो दूसरा किनारा सिद्धालय (सिद्धक्षेत्र) है । नदी में कभी तीव्र बहाव होता है कभी मंद, ऐसे ही शेष सभी संसार की नाना पर्यायों को प्राप्त हो रहे हैं, कभी स्थावर, कभी त्रस, कभी देव, कभी नारकी, कभी मनुष्य, कभी तिर्यंच, कभी पृथ्वीकायिक तो कभी वायुकायिक, कभी जलकायिक, कभी अग्निकायिक, कभी वनस्पति कायिक, कभी सूक्ष्म, कभी बादर, इस तिनके रूपी जिन्दगी की बस यही औकात है यह किनारे पर लग जाये या महासागर बन जाये तभी जिन्दगी की सार्थकता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

22

''माला और ताला''

साधक के लिए माला और श्रावक (गृहस्थ) के लिए ताला उपयोगी है किन्तु तभी जब माला में साधक का मन हो, गृहस्थ का ताला भी तभी सार्थक है जब उसमें धन हो, खाली मकान - कमरे का, सूटकेस, बॉक्स का ताला लगाना बेकार है यह उस वस्तु का व ताले का दुरुपयोग है। मन से रहित माला साधक के समय का दुरुपयोग है। मन सहित माला साधक को आत्मध्यानी व तत्त्वज्ञानी बनाती है। धन सहित ताला गृहस्थ को सत्पात्रदानी और स्वाभिमानी (सम्मानीय) बनाता है। माला से प्रभु सुमिरन होता है। गुरु उजाला (कृपादृष्टि) से समाधिमरण (सुमरण) व भवदधि तरन होता है। आज ताला धन पर नहीं मन, वचन व तन की प्रवृत्ति पर भी लगाना चाहिए ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

23

''क्रुद्ध और बुद्ध''

क्रुद्ध पुरुष की संगति व्यक्ति को क्रुद्ध व रौद्र परिणामी बनाती है। क्रुद्ध की संगति में युद्ध संभावित है, क्रुद्ध के पास संघर्ष और संहार है, अग्नि की ज्वाला सम पाप है, मानसिक संताप है पूरा जीवन ही अभिशाप है, जीवन्त जीवन भी दहकता अंगार है। इसके विपरीत बुद्ध पुरुष (प्रत्येक बुद्ध, बोधित बुद्ध या स्वयं बुद्ध) की संगति व्यक्ति को संयम शूर व बोध या बोधि परिणामी बनाती है। बुद्ध की संगति में आत्मा की शुद्धि संभावित है। बुद्ध के पास हर्ष है, प्रमोद है, वात्सल्य है, वैराग्य है, जीवन की यथार्थता है, सार्थकता है, पुण्य का खजाना है, धर्म का बीज है, ज्ञान का अमृत है, भक्ति की मधुर झंकार है, श्रद्धा की भूमि है, समर्पण का हार है संक्षेप में क्रुद्ध के पास संत का अंत है, दुःखाविध अनंत है। बुद्ध ही संत है, तुम्हारे संतत्व का पंथ है, उभय निर्ग्रन्थ है यही दुःखाविध का अंत है व यहाँ सुखाविध अनंत है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

24

''उत्साहित मन''

जीवन में उल्लास, उत्साह, उमंग व पापों से उदासीनता आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना उन्नति का मार्ग प्रारंभ नहीं होता । जो पूर्वाग्रह, दुराग्रह व हठाग्रहों के मजबूत बंधनों में बंधे हैं वे आज तक कहीं भी नहीं पहुँच सके, आज भी उन्हीं बंधनों में कसे हैं जिनमें पहले कसे थे । जो मुक्तपक्षी की तरह गगन में लक्ष्य की ओर बढ़े हैं मंजिल ने उनके कदम चूमे हैं। उत्साह युक्त जीवन ही उल्लासित होता है, उमंग युक्त जीवन प्रतिपल नूतन व तनाव रहित होता है। विवेक पूर्वक प्रत्येक क्रिया को उत्साहित मन से करो। द्रव्य, क्षेत्र, काल के अनुसार वर्तन करो, यही सुखी जीवन का यथार्थ मार्ग है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

25

''ऐसी संगति क्यों?''

दुर्जन पुरुष को कोयले की, काँटे की, सर्प की, जोंक की, बिल्ली की, बंदर की व पाषण खण्ड की उपमाएँ दी जाती हैं क्योंकि कोयला लाल हो तो घातक होता है (हाथ जलायेगा), काला है तो काले करेगा तत्काल में ही नहीं बाद में भी । काँटा चाहे गीला हो या सूखा वह चुभेगा ही, कोमल है तो कली में व कठोर होता है तो पैर में । ऐसे ही सर्प को दूध पिलाने पर वह जहर ही उगलता है, जोंक दूध से भरे स्तनों पर चिपक कर भी खून चूसती है। बिल्ली दूध न पीती है और न दूसरों को पीने देती है, फैला देती है। बंदर को उजाड़ने में आनंद आता है। पाषाण खण्ड कितनी ही देर पानी में पड़ा रहे कभी कोमल, विनम्र नहीं होता है, दुर्जन भी उक्त स्वभाव वाले होते हैं, इनकी संगति पाकर सज्जन भी दुर्जन होने लगता है न भी हो तब भी बदनाम तो हो ही जाता है। जैसे अग्नि पड़ी लकड़ी अग्नि बन जाती है वैसे ही दुर्जन की चिरकालीन संगति सज्जन को भी दुर्जन बना ही देती है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

26

''उसके मरण का सोच क्या?''

उसकी मृत्यु सोचनीय या खेद करने योग्य है जिसने अपना जीवन रोग, शोक, भोग और मोह के आगोश में सोते - सोते बिता दिया या चंद चांदी के टुकड़ों को पाने रोते - रोते बिता दिया अथवा सुख की आकांक्षा में लालची बन पथ भ्रष्ट हो पाप रूप क्रिया करके दुःख के बीज बोते - बोते बिता दिया और धर्म के प्रसंग पाकर भी जिसने प्रभु परमात्मा, साधु संत, महात्मा, आत्मा - पित्रात्मा या माँ की निन्दा कर कर्म का भार ढोते - ढोते बिता दिया किन्तु जीव विराधना को छोड़ संयम साधना की है, बेहयापना छोड़ प्राणी मात्र पर दया की है, भोग वासना छोड़ योग साधना की है, वासना छोड़ प्रभु उपासना की है, भुक्ति छोड़ प्रभु भक्ति की है उसकी मृत्यु सोचनीय नहीं वंदनीय, स्मरणीय, उपासनीय, प्रशंसनीय ही होती है। भले आदमी को ऐसी मृत्यु की ही कामना भावना करनी चाहिए।

"जो अहर्निश रहता रहा,
धर्म ध्यान में ही लीन है।
उसके मरण का सोच क्या?
वह तो मुक्त, बंधन हीन है।।"

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

27

''मुस्कराते रहो''

अधिक खाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है अधिक उपवास करना भी उचित नहीं, अधिक चलने से हड्डियाँ कमजोर हो जाती है अधिक बैठना भी संधियों व जोड़ दर्द का कारण है, अति उत्साह, उल्लास को नष्ट करने वाला है, अधिक हँसना ढीठपना व व्यर्थता देने वाला है, अधिक चुप पशुवत् मूक बनाने वाला है किन्तु जीवन में मुस्कराहट ही एक ऐसी चीज है जो स्व पर की कड़वाहट को मिटाने वाली है। मुस्कराने से रक्त शोधन होता है पाचन शक्ति ठीक रहती है, कई आवश्यक हारमोन्स द्रवित होते हैं। मुस्कराहट के सामने दुःख, विषाद, अवसाद, चिन्ता व प्रतिकूलताएँ ठहर नहीं पाती, मुस्कराता जीवन खिलते पुष्पों की तरह आनंद की बरसात करने वाला जीवन कहलाता है अतः सदैव मुस्कराते रहो।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

28

''प्राकृतिक रूप दिगम्बर संत''

पृथ्वी, सागर, नदी, तालाब, पर्वत, वन, उपवन, आकाश, वृक्ष आदि प्राकृतिक निरावरण रूप है। इसलिए अत्यन्त सुन्दर है। सावरण रूप विकृति का प्रतीक है। आवरण विकारों पर ही डाला जाता है प्राकृत रूप पर नहीं । प्राकृतिक रूप धारी दिगम्बर संत प्राकृतिक देन है। प्रकृति के साथ छेड़छाड़ या प्रकृति की उपेक्षा या प्रकृति के विकार या प्राकृतिक प्रकोप कभी भी कुशल मंगल के कारण नहीं, ये तो संहार या विध्वंस के ही हेतु हैं। इसी प्रकार मानव विकृत रूप बुराईयों का पिण्ड है, प्रकृति रूप परमात्मा का ही परिचायक है। निरावरण चिंतामणि, कल्पवृक्ष, कामधेनु ही फलदायी होते हैं। निरावरण ज्योति पुंज सूर्यचंद्र आदि प्रकाश देने में समर्थ हैं, निरावरण पारसमणि ही लोहे को स्वर्ण बनाती है अतः प्राकृतिक रूप में रहो या प्रकृति की संगति में रहो यही परमात्मा बनने का मार्ग है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

29

''मयूर पंख''

मयूर पंख में निहित प्राकृतिक वर्ण है वह कभी फीका नहीं पड़ता अत्यंत सुन्दर व चित्तहारी होता है, स्वाभाविक लघु होता है, रज, जल व स्वेद को ग्रहण नहीं करता । मृदु इतना होता है कि आँख में लगा दो तो कष्ट नहीं होता, स्पर्शन अत्यंत प्रिय होता है। जल में डूबता नहीं, थल पर भी ठहर सकता है, हवा में भी उड़ सकता है, गंदगी को स्वीकार नहीं करता, परिग्रह नहीं करता व स्वर्णिम होता है। विषधर व विषयी इससे दूर भागते हैं, औषधि के समान है, कल्याण की प्रेरणा देने वाला है, धर्म का प्रतीक है, जीवों की रक्षा का उत्तम उपकरण है, मयूरों द्वारा सहज परित्याज्य है इसलिए संयमी साधकों द्वारा जीव रक्षा के उपकरण में प्रयोग किया जाता है। नारायण श्री कृष्ण व हरिवंश के तिलक अरिष्ट नेमि तीर्थंकर द्वारा भी धारण किया गया था ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

30

''अपने - अपने कर्मो का फल''

एक माँ के दो बेटे हैं एक राजा है दूसरा उसी राज्य में भिखारी है, एक उद्यान के दो वृक्ष हैं एक सूखा है एक हरा - भरा, फूला - फला है, एक समुद्र की दो सीप हैं एक में मोती है दूसरा खाली है, एक ही खान के दो पत्थर एक से मूर्ति बनती है दूसरा सड़क पर बिछाया जाता है, इन उपरोक्त उदाहरणों से सिद्ध होता है कि प्रत्येक प्राणी का पुण्य व पाप अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। जिसकी सत्ता में जो होता है उसके उदय में वही कर्म आता है। अशुभ / पाप कर्म का फल दुःख और शुभ / पुण्य कर्म का फल सुख होता है, यदि आपको भी सुख चाहिए तो पुण्य कार्य में खुद लग जाइये, दूसरे का पुण्य - पाप तुम्हारे उदय में कभी नहीं आयेगा, यह तो आप भी जानते हैं कि तुम्हारा पेट तभी भरेगा जब तुम भोजन करोगे।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

31

''कुछ कार्यकर्ता ऐसे भी''

आपने दिल्ली में लाल किला के सामने बने लाल मन्दिर को देखा है? कुछ ने देखा है कुछ ने नहीं भी देखा होगा - तो आपने अपने नगर का जिन मंदिर देखा है यदि हाँ तो बताओं मंदिर में शिखर व कलश कहाँ होता है? मंदिर के ऊपर जिन भगवान् के ऊपर। किन्तु शिखर या कलश की स्थापना स्तंभ या दीवाल के बिना संभव थी? नहीं। अतः कलश का आधार शिखर, शिखर का आधार दीवाल या स्तंभ, उसका भी आधार होती है उस भवन या मंदिर की नींव। नींव के बिना कोई भी विशाल भवन का निर्माण संभव नहीं, इसी तरह किसी भी मांगलिक कार्यक्रम में सभी का सहयोग रहता है। कुछ कार्यक्रम में कलश की तरह चमकते हैं कुछ शिखरवत् होते हैं, कुछ स्तंभ या दीवार सम होते हैं। जो कलश या शिखर की तरह चमकते हैं उनका पुण्य कम है, जो स्तंभ या दीवाल की तरह हैं उनका असंख्यात गुणा पुण्य होता है, किन्तु जो नींव की तरह गुप्त सेवक है उनका पुण्य अनंत गुणा है। अहो धर्मानुरागी महानुभाव ! तुम भी ऐसे ही कार्यकर्ता बनो।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

32

''तुम भले ही भूल जाओ''

मौत को तुम भले ही भूल जाओ किन्तु वह किसी भी जन्मे हुए व्यक्ति को नहीं भूलती है तथा मौत से डरने से व्यक्ति अमरत्व को प्राप्त नहीं होता क्योंकि भयभीत व्यक्ति को मौत छोड़ती नहीं है, निर्भीक व्यक्ति को मौत छू भी नहीं सकती। सम्यग्दर्शन का कवच - सम्यग्ज्ञान की ढाल व सम्यग्चारित्र की तलवार लेकर जो संसार के युद्धक्षेत्र में कर्मों से युद्ध करते हैं वे कर्मों को नष्ट करके निष्कर्म अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं, आत्मोपलब्धि सिद्धि को प्राप्त कर वे सिद्धात्म पुरुष अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं, आत्मोपलब्धि सिद्धि को प्राप्त कर वे सिद्धात्म पुरुष जन्म - जरा मृत्यु जैसे समस्त रोगों से मुक्त हो जाते हैं। मौत से सामना डर कर नहीं डटकर करो, मौत को देखकर भागों नहीं अपितु मौत को देखकर जाग जाओ और मोक्ष मार्ग में लग जाओ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

33

''पहले तोलो फिर बोलो''

बोलने वाले व्यक्तियों को चाहिए कि वे बोलने से पहले अपने वचनों को तौल ले, यदि बोलने से पुण्य कम पाप ज्यादा उत्पन्न होता हो तो न बोलना ही श्रेयस्कर है, किन्तु बोलने से पाप कम पुण्य ज्यादा, दुःख कम सुख ज्यादा हो तो वहाँ बोलना ही उपयोगी है। बोलने वाले सज्जन बंधु तुम ऐसा बोलो जिससे सुनने वाले की मन की गाँठ भी खुल जाये, उसके वचन स्व पर हित के लिए व शांति प्रदान करने वाले हो, चित्त में मिश्री घोलने वाले हो। वचन वही सार्थक हैं जो हितकर हो, सीमित हो, सत्य से अनस्यूत हो व मधुरिम हों। इसके विपरीत अहित कारक निस्सीम (आवश्यक) असद्भूत एवं कड़वे वचन कभी भी नहीं बोलने चाहिए। ऐसे वचन बोलो जिन्हे सुनने के लिए दुनियाँ तरसे, सुनकर वह योगत्रय से हर्षे, सुनकर उसे ऐसी अनुभूति हो जैसे आत्मा में सुख के सघन मेघ बरसे।

"ऐसी वाणी बोलिये, अहं अघादि हो नष्ट।
निज पर को भी सुखद हो, नश जावें सब कष्ट।।"

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

34

‘‘दीपक के प्रकाश में’’

एक शराबी युवा सत्यार्थी / सत्यबोध (किसी मासिक पत्रिका) को पढ़ रहा था पढ़ते - पढ़ते अपनी पत्नी से बोला इस पत्रिका में (सत्यार्थी मीडिया) तो शराब के बहुत दोष बताये हैं, शराब के निर्माण में जीव हिंसा होती है, यह मादक है, स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाली है, यह एक प्रकार से मीठे जहर के समान है, यह बुद्धि को भ्रष्ट करने वाली है इसका शौक व्यक्ति को बरबाद करके ही रहता है। जो पीता है सुरा, उसका होता है बुरा ही बुरा । शराबी तत्काल जमीन पर गिरता है फिर समाज व धर्म की नजर में गिरता है, तत्पश्चात् खुद व खुदा की दृष्टि में भी गिरता है इतना ही नहीं वह गिरता ही चला जाता है, परलोक में भी अधोलोक या पाताललोक (नरकों) में जाता है, वह न यहाँ सुख पाता है न वहाँ । इतनी बात सुन पत्नी बोली - मैंने तो आपको कई बार समझाया है आप मानते ही नहीं, आज खुद पढ़ लिया तो समझ में आया । पति ने कहा ठीक है कल से बंद, पत्नी ने कहा धन्य मेरे भाग्य जो आपने शराब पीना बंद कर दिया । पति बोला चुप रह, शराब पीना नहीं स्वाध्याय करना बंद कहा है क्योंकि स्वाध्याय करते बुरा काम नहीं कर सकता, “दीपक लेकर कुँए में कैसे गिरे?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

35

‘‘ यदि धारणा ही गलत हो’’

जो केवल दूसरों के लिए बोझा ढोता है उसका किंचित् भी उपयोग / उपभोग खुद के लिए नहीं करता उसे विद्वान लोग पशु या गधा कहते हैं तथा कुछ प्रज्ञ मनीषी उन्हें भी गधा कहते हैं जिनकी गलत धारणाएँ होती है जैसे अपने दुःखों का कारण खुद के कर्मों को न मानकर दूसरों को मानना, या बिना सकल संयम के मुक्ति को मानना या हरा चश्मा लगाकर सूखी घास को हरी घास मानना, विषय वासना को विनय उपासना मानना, भोग व जीव विराधना में सुख मानना न कि योग साधना में । सुख, साधनों की संवृद्धि में सुख, साधना में नहीं इत्यादि गलत धारणाएँ । एक शब्दभाषी पंडित भी शब्द रूपी पुद्गल बोझा अपने मस्तिष्क पर रख देता है। वह भी गलत धारणाएँ बनाये रखता है कि अकेले सम्यक्त्व से ही (बिना संयम के) कल्याण हो जायेगा, बिना व्यवहार के भी निश्चय संभव है, इत्यादि गलत धारणाऐं भी मन में है तब क्या वह गधा नहीं है? अब आप ही बताओं सही अर्थों में सच्चा गधा कौन है? चौपाया पशु या संयमी विरोधी विद्वान्?

36

''फलों के फल (शब्दाशय)''

"आम" शब्द का आशय है संसार में आया है तो मरना ही पड़ेगा, जो भी जन्मेगा या व्यवहार राशि में आयेगा वह निश्चित ही मरेगा । चीकू कहता है चीत्कार किया तो कुत्ते जैसी जिन्दगी बन सकती है। जामुन तो जा –मन की बात है।मौसमी अर्थात् मो-सम-मी मेरे समान मै ही हूँ और कोई नहीं है। अपनी जिन्दगी को पापों से सेव कर सकते है वे ही संतरे बन जाते है संतरे ही तरते हैं अर्थात् जो सम् (स) है वही तिरे । जो विषयों में रमते हैं वे कैसे तिर (तर) सकते हैं,लीची अर्थात् चीचीं करके आत्मा मरी जा रही है किन्तु जो खरबूजा होता है वह बोध को प्राप्त नहीं होता तरबूज तरे व्यक्ति से बूजता है वह तरता है अतः अज्ञानी से नहीं ज्ञानी से पूछो। अनार अर्थात् ऊधम मत करो।केला 'क' माने आत्मा को एला की तरह सुरक्षित रखो, बाह्य आवरण छोड़ अंग से दूर जा और हो सके तो अंगूर सम रस से भरपूर – रसभरी बन, सहतूत याने सह – तू तब तरेगा ।नहीं तो संसार में आया है तो निश्चित मरेगा । श्रीफल अर्थात् मुक्ति श्री को देने वाला।श्रीफल कहता है भगवान् के सामने बाहर का श्रीफल ही नहीं श्रीफल भी चढ़ाओ एवं उसके साथ – साथ दूसरा संकेत यह भी करता है श्रीफल बाहर से कठोर व अंदर से जल युक्त होता है । उसी प्रकार सभी शासक को बाहर से कठोर व अंदर से आर्द्र युक्त होना चाहिए।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

37

''संग्राम हो तो संघर्ष भी?'

जीवन में संग्राम होगा तो संघर्ष भी होगा । संग्राम का आशय संग में राम हो, रा का आशय रिषभदेव से म – महावीर तक सभी तीर्थंकर हों तो संघ में हर्ष भी होगा अथवा समभाव युक्त होता है उसका जीवन विनय से हर्षमय होता है इसलिए स (सम) भाव की कल्पना करो । संकल्प / प्रतिज्ञा करो सम् पालो अर्थात् सं भाव को भालो अर्थात् भाव को जीवन भर पालो । अपने आप को संभालो अर्थात् सं भाव को भालो अर्थात् जानो, आचरण में लाओ यही वीर संदेश अर्थात् समत्व भाव प्राप्त करने की देशना ही सर्वस्व देते हैं, सं का यत्न जो भी करेगा वह संयत कहलायेगा । सं भाव ही दर्भ के अंकुर के समान होता है अर्थात् सम् भाव अत्यंत कोमल होता है चिर स्थायी होता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

38

''सोच अपनी - अपनी''

एक दिन किसी संत के पास एक युवा दम्पत्ति आये, उनमें से पुरुष ने संत से कहा मैं बहुत दुःखी हूँ, मुझे दस रुपये का नुकसान हो गया यदि मेरे पास दस रूपये होते तो किसी संत की या गरीब की सेवा करता, भोजन देता, सहायता करता हो सकता है कि धर्म ध्यान करता । उसकी पत्नी ने कहा नहीं महात्मन् ये झूठ बोल रहे हैं इन्हे दस रूपये का नुकसान नहीं हुआ अपितु २ लाख रूपये का लाभ हुआ है अब धर्म के लिए कुछ भी खर्च करने को तैयार नहीं हैं कहते हैं जब तक दस की पूर्ति नहीं होगी तब तक मैं धर्म के लिए तुम्हें एक पैसा भी नहीं दूँगा । संत ने पूछा क्या हुआ? इन्होनें दस रूपये का लाटरी का टिकिट लिया था २ लाख रूपया नगद इनाम में मिला फिर भी दुःखी हैं। जिसकी सोच नकारात्मक है उसे कौन सुखी कर सकता है वह तो उस किसान की तरह है जो एक बीज खेत में बोकर, करोड़ बीज प्राप्त करे फिर भी रोये । फल पाने के लिए बीज को प्रशस्त भूमि में बोना ही पड़ता है अर्थात् उसे खोना पड़ेगा । जो बीज नहीं बोता उसका जीवन सफल नहीं होता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

39

''नीयत गर साफ है तेरी''

प्रातः ही जब हम शौच के लिए जा रहे थे तभी उधर से एक बालक आ रहा था, वह अनमना सा दिखाई दे रहा था । एक श्रावक ने उससे पूछा तो रोने लगा - श्रावक ने रोने का कारण पूछा तो वह बोला मैं दूध लेने गया था मेरी अठन्नी गुम गई - दूध कैसे ले जाऊँ? दूध न ले जाने पर मम्मी डाटेगी पिटाई लगायेगी यह सुनकर एक श्रावक ने अपनी जेब से अठन्नी निकाल कर उसे दे दी । वह बालक थोड़ी देर बाद जोर से रोने लगा उससे पूछा - अब क्या बात है? अब तो मम्मी नही पीटेगी, वह बोला अब पापा पीटेंगे, श्रावक ने पूछा क्यों? जब मैं यह घटना पापा को सुनाऊँगा तो वे कहेंगे बुद्धिहीन, कबख्त तूने अठन्नी क्यों कहा? पाँच रूपये क्यों नहीं कहा? कहने का आशय यह है कि जो अभाव में जीने वाला है उसे कौन सुखी कर सकता है?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

40

''अंतिम परीक्षा के अंतिम क्षण''

धर्म बचपन में नहीं तो यौवन में कदाचित् वहाँ भी नहीं तो पचपन में अवश्य हो । शैशव अवस्था में धार्मिक होने का आशय है (नर्सरी की परीक्षा पास करना) या साप्ताहिक परीक्षा पास करना,युवावस्था में धार्मिक होने का आशय है मासिक परीक्षा उत्तीर्ण करना, प्रौढ़ावस्था में धार्मिक होने का आशय है अर्द्धवार्षिक अर्थात् महत्वपूर्ण परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाना किन्तु वृद्धावस्था में धार्मिक होने का आशय है वार्षिक परीक्षा यानि अत्यन्त महत्वपूर्ण परीक्षा में उत्तीर्ण होना । जो मात्र साप्ताहिक परीक्षा में या शैशव अवस्था या नर्सरी में सामान्य पदोन्नति को प्राप्त हुए हैं वह कोई महत्व की बात नहीं उससे महत्वपूर्ण मासिक परीक्षा है उससे महत्वपूर्ण त्रैमासिक व अर्द्धवार्षिक परीक्षाएँ है किन्तु वार्षिक परीक्षा में उत्तीर्ण ही उत्तीर्ण माना जाता है, उसे ही प्रमाण पत्र दिया जाता है पदोन्नति तो वार्षिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने से है अर्थात् वृद्धावस्था मे धर्मात्मा होना आवश्यक है। तभी जीवन सफल और सार्थक है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

41

''सद्विवेक का छाता''

जब तक जीवन है तब तक पुण्य - पाप का उदय भी आयेगा । पुण्योदय में इष्ट पदार्थों की प्राप्ति व सुखोपलब्धि संभव है पाप के उदय में दुःख व अनिष्ट पदार्थों की प्राप्ति, कदाचित् पुण्य की सम्प्रेरणा भी मिल सकती है। चाहे कोई धर्मात्मा हो या अधर्मी, चाहे विद्वान हो या मूर्ख, चाहे सुंदर हो या असुंदर इससे कुछ भी, कोई भी फर्क पड़ने वाला नहीं है। जो धर्मात्मा या विवेकी पुरुष हैं वे पुण्योदय में इतराते नहीं, फूल के गुब्बारे नहीं बनते अपने कर्त्तव्य में भूल नहीं करते, पाप के उदय में घबराते नहीं, फूलते नहीं भव के झूले में झूलते नहीं । अपने परिणामों को दोनों स्थितियों में सम रखने का पुरुषार्थ करते हैं तथा सद्ज्ञान व समता भाव के छाते को तान कर कर्मोदय की वर्षा को प्रसन्नता से सहते हैं और निज में रहने का पुरुषार्थ करते हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

42

''सीधापन नहीं तो सीतापन ही सही''

ऊ ाम्आर्जव रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुःखदानी ।

संसार में सबसे उत्तम रीति तो आर्जव धर्म या चित्त की सरलता है, सरलता सहजता में ही चित्त सुखोत्पन्न करता है, कुटिल चित्त से सुखोद्भव उसी प्रकार असंभव है जैसे वंध्या स्त्री से पुत्रोत्पत्ति, रेगिस्तान में सरिता प्रवाह, निर्झर झरने । अतः प्रत्येक सुखाभिलाषी पुरुष को आर्जव रीति का ही प्रयोग करना चाहिए । हे माताओ बहनों जीवन में सीधापन लाओ, छलकपट को पूर्णतया त्याग दो, छल को अपना बल मत बनाओ, छल बली नहीं निर्बली है, दुर्बली है। निश्छली ही निर्मली है, आत्मबली है। यदि आप में पूर्ण सीधापन नहीं आ पा रहा है तब भी चिंता मत करो जीवन में सीतापन (सीता जैसी प्रवृत्ति करो) धारण करो । जीवन में किसी से कोई शिकायत नहीं, प्रतिकूलताओं में भी अपने आपको दोषी मानना पति, सास, ससुर, देवर आदि को दोषी नहीं सोचना, यही आत्म शांति का मार्ग है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

43

''एक धर्म के काज''

विज्ञ पुरुषों ने कहा है –

"धन दे तन को राखिये, तन दे रखिये लाज ।
धन दे तन दे लाज दे, एक धर्म के काज ।।"

जो व्यक्ति धन खर्च कर शरीर की रक्षा करता है, शरीर को कष्ट देकर भी अपनी प्रतिष्ठा मर्यादा की रक्षा करता है और धन को खर्च कर शरीर को कष्ट देकर तथा अपनी प्रतिष्ठा मर्यादा का उल्लघंन कर भी धर्म की रक्षा करता है। वही सही मायने में धर्मात्मा है (आत्म रक्षक तो लोक व्यवहार की भी परवाह नहीं करता) धर्मात्मा को अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए किंतु जो ऐसा नहीं करके विपरीत करता है वह मन सुख, तन सुख, यश कीर्ति का सुख, स्वर्ग के वैभव का सुख व आत्म सुख से वंचित रह जाता है कहा भी है –

"धन बचाया खाज (रोग) तन, तन रक्षा गई लाज ।
ताज, लाज अरु खाज में, गया स्वर्ग का राज ।।"

धन के लोभी का तन रोगी रहता है, तन की सुरक्षा में आसक्ति रखने वाला भोगों का कीड़ा बन जाता है अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा नहीं कर पाता ऐसा व्यक्ति ताज, खाज, लाज और आन के चक्कर में स्वर्ग के सुख से भी वंचित रह जाता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

44

''टेढ़ापन तेरापन नही''

कंत में (पति में / स्वामी में) सीधापन हो तो गृहस्थ जीवन में नारी को सोलह सुख मिल जाते हैं, घर स्वर्ग बन जाता है। संत में सीधापन , सरलता ,सहजता, समता, समरसता व समन्वयता का भाव हो तो समाज को, राष्ट्र को, विश्व को सुख शांति की राह मिल जाती है। उस संत का भी कल्याण हो जाता है, विश्व ही वैकुण्ठ बन जाता है। पंथ में मार्ग में सीधापन हो तो राही को मंजिल की प्राप्ति सुख - शांति के अभूतपूर्व आनंद के साथ शीघ्र होती है। ग्रंथ में सीधापन / सरल भाषा हो तो उसका सार - भावार्थ जल्दी समझ में आ जाता है। अंत में जीवन के भी यदि सीधापन आ जाये तो समाधि मरण - सुगति गमन सहजता में हो जाता है। महानुभाव ! यह टेड़ापन - तेरापन नहीं है यह सहजता, सरलता, समता, समरसता व समन्वयता सुख - शांति सुबोध व सुमित्रता की जननी है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

45

''तब चमकेगी आत्मा''

कपड़े धुलने के बाद चमकते से दिखाई पड़ते हैं, बर्तन भी मंजने के बाद चमकते है, सोना - चाँदी, लोहा, पीतल, तांबा आदि या उनके उपकरण तपाने के बाद खूब चमकते हैं, हीरा आदि रत्न भी तराशने के बाद ही चमकते हैं, मानव शरीर भी रोग मुक्ति के बाद स्नान, श्रृगांर व वस्त्राभूषण से चमकता है। चमकता हुआ पदार्थ अपनी आभा का प्रभाव सामने वाले उपकरण पर भी छोड़ता है। हमारी आत्मा भी चमक सकती है, किन्तु कब? जब वह संयम के जल से धोई जाये जिससे विषय - वासना की कीचड़ धुल जाये, चार प्रकार के धर्म ध्यान से मांजी जावे, चार प्रकार के शुक्ल ध्यान के निर्मल वस्त्र से पोंछी जाये,केवल के सूर्य का प्रकाश हो तथा अनन्त चतुष्टय वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो । तभी चमक सकेगी तुम्हारी आत्मा

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

46

''ढाँ कें तो सही''

जब आंधी - तूफान चलता है तब आप अपने - अपने चूल्हे को ढाँकते हैं, घर के दरवाजे बंद कर लेते हैं, हिमपात हो रहा हो तो अपने शरीर को कपड़े से ढाँक लेते हो, भीषण गर्मी में भी शीतल पदार्थों का सेवन, गर्मी निवारक कपड़े या छाते आदि का प्रयोग करते हो। वर्षा में भी छाता, ओवरकोट आदि पहन कर अपना बचाव कर लेते हो, बदबू आ रही हो तो अपनी नाक को ढाँक लेते हो, या रास्ता बदल लेते हो (पहले से ज्ञात हो जाये तो), सामने दृश्य गंदे हो या चित्र चित्त की संक्लेशता के कारण हो तो आँखे बंद कर लेते हो, कोई धर्म के विरुद्ध या तुम्हारे मनोविरुद्ध वचन बोल रहा हो तो कानों को बंद कर लेते हो, आंधी को नहीं रोकते, हिमपात को नहीं रोकते, वर्षा, गर्मी को भी नहीं रोक सकते, बदबू / दुर्गंध, कर्कश ध्वनि / अप्रिय ध्वनि या अशोभनीय चित्रों को भी नहीं हटा सकते तब फिर बुरे विचारों के समय अपने मन को क्यों नहीं ढकते? बुरे शब्द सुनकर अपने कान बंद क्यों नही कर लेते? बुरे दृश्य या अप्रिय दृश्य देखकर आँख बंद क्यों नही कर लेते? काश ! तुम ऐसा कर सको तो 99 प्रतिशत बुराईयों से, पापों से, दुःखों से बच जाओगे ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

47

''पापोदय में मित्र भी शत्रु''

अरे मानव ! क्या तू जानता नहीं जब पाप का उदय होता है तो पत्नी भी धक्के देकर (बाहर करके) गेट बंद करती है तो पुण्य के उदय में वही पत्नी अर्द्धरात्रि तक बारह - वर्षों तक इंतजार करती है। पाप के उदय में माँ खुद के भ्रूण (गर्भस्थ शिशु) के प्राण लेने वाली असाता रूप हो जाती है तो पुण्य के उदय में वही त्राता (रक्षक) हो जाती है। पाप के उदय में परिवारी जन भक्षक हो जाते हैं, पुण्य के उदय में रक्षक हो जाते हैं। जब पाप का उदय होता है तब भाई - भाई को तंग करना चाहता है पुण्य के उदय मे संग रहना चाहता है पाप के उदय में बहन अपने सगे भाई का भी अपमान करती है पुण्य के उदय में भाई के नौकर या बेटे - भतीजे का भी सम्मान करती है पाप के उदय में मित्र भी शत्रु बन जाता है पुण्योदय में शत्रु भी मित्र जैसा व्यवहार करता है। पाप के उदय में खुद का तन, मन व वचन भी प्रतिकूलता दिखाते हैं साथ नही देते, छाया भी साथ छोड़ जाती है, पुण्य के उदय में पराया धन, तन, वचन व मन भी अपनी सिद्धि व साधना में सहायक बन जाते हैं, शरीर में विशेष तेज दृष्टिगोचर होता है। अतः पाप छोड़ पुण्य जोड़ यही भव सिंधु तारक नौका है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

48

''पंच शुद्धि''

जब मानव के पास शुद्ध वित्त की वृद्धि होती है, तो वह शुद्ध वित्त सत्पात्रों (मुनि, आर्यिका, व्रती, श्रावक, श्राविकाओं) की वैय्यावृत्ति सेवा में या नवदेवता (अर्हंत, सिद्ध,आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य व जिन चैत्यालय) की पूजा - अर्चना संवृद्धि में ही व्यय होता है। जब जीवन में चित्त की शुद्धि में वृद्धि होती है तब वह आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाक विचय, संस्थान विचय रूप चारों धर्म ध्यान या दश प्रकार के धर्म ध्यान (आज्ञा विचय, विपाक विचय, अपाय विचय, उपायविचय, लोक विचय, जीव विचय, विराग विचय, हेतु विचय, संस्थान विचय, व अजीव विचय) का कारण बनता है तथा चार प्रकार के शुक्ल ध्यान का भी हेतु है। किसी के पित्त / कुल की शुद्धि उसके मान - सम्मान में वृद्धि की कारक होती है। पुत्र की शुद्धि सुसंस्कारों की वृद्धि पिता के लिए सुख शांति की निमित्त होती है। मित्र की शुद्धि समीचीन मित्र का साथ - जीवन को शाश्वत सुख के मार्ग में ले जाने वाला दुःखों से बचाने वाला होता है। अतः जीवन में वित्त, चित्त, पितृ, पुत्र व मित्र इन पाँचों की शुद्धि अवश्य रखो, यही पंच परावर्तन के कारणों के नाशक हैं।

49

''नयवाद पगदण्डी है''

महानुभाव, संसार में अनंतानंत रोगी हैं (जन्म, जरा, मृत्यु आदि दुःखों से पीड़ित हैं) अनंत भोगी हैं। कर्म फल चेतना या कर्म चेतना के फल को या सांसारिक सुख - दुःख को भोगने वाले हैं। कुछ संयोगी हैं कुछ वियोगी हैं तब भी दुःखी हैं। अत्यल्प भाग योगी महात्मा का है । इस संसार में कोई योगी पूर्ण रूप से गलत नहीं है, उसमें कोई ना कोई अच्छाई अवश्य होगी उसे तुम ग्रहण कर लो । क्योंकि संसार में आज कोई भी योगी पूर्ण रूप से सही नहीं है उसकी भी द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावानुसार, मर्यादा / सीमा है, अतः आज के सभी योगी किसी न किसी नयवाद से सही हैं। नयवाद मंजिल तक पहुँचने की एक पगदण्डी मात्र है। प्रमाण ज्ञान का धारी सर्वज्ञ ही मंजिल है। जब तक राष्ट्रपथ रूपी सर्वज्ञ या प्रत्यक्ष ज्ञान रूपी मंजिल की प्राप्ति नहीं हुई है तब तक नयवाद रूपी पगदण्डी का सहारा लेकर मंजिल की ओर बढ़ते रहो, यही तुम्हारी बुद्धिमानी है। पगदंडियों की निंदा करने से मंजिल नहीं मिलेगी । स्याद्वाद की दृष्टि से देखोगे तो सब अच्छा लगेगा अनेकान्तात्मक गुणी कर्णों से सुनोगे तो कुछ भी बुरा / गलत नहीं लगेगा, फिर तुम ही कहोगे सब ठीक है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

50

''कैसा हो शासक''

स्वयं पर शासन करके दूसरों पर शासन करने वाला ही योग्य शासक कहलाता है। संसार में चार प्रकार के शासक होते हैं, प्रथम शासक सूर्य की तरह अर्थात् समुद्र आदि से जल लेता ही लेता है लौटाता नहीं है, जो शासक जनता से मात्र लेता ही लेता है जनता को कुछ देता नहीं है - वह शासक संताप कारक जघन्य शासक कहलाता है। दूसरे प्रकार का शासक मेघ (इन्द्र) की तरह होता है जो समुद्र आदि से जल लेकर वसुधा को लौटाता रहता है, वह मध्यम प्रकार का शासक होता है। तीसरे प्रकार का शासक चन्द्र के समान होता है वह जनता से कर के रूप में कुछ लेता नहीं, मात्र देता है, चन्द्रमा कुछ लेता नहीं मात्र शीतल चांदनी लुटाता है, ऐसा शासक सर्वोत्तम व सर्व प्रशंसनीय होता है। चतुर्थ प्रकार के शासक वह होते है जो जनता से न कुछ लेते हैं और न कुछ देते हैं वे आकाश की तरह शून्य होते हैं वे नाम मात्र के शासक होते हैं, वे भरत चक्रवर्ती ही तरह उदासीन जीवन जीते हैं अथवा अध्यात्म योगी की तरह अपने आप में ही विषय विकारों से रहित होकर जीते हैं। उत्तम मेघवत् दीर्घजीवी व चिरकाल तक शासन करने वाले होते हैं। सर्वोत्तम शासक चन्द्रमा की तरह अकारण कृपा दृष्टि बरसाने वाले होते हैं। जिस देश में उत्तम या सर्वोत्तम शासक हैं वे ही देश उन्नतशील होते हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

51

''मात्र चार सूत्र''

यदि आप गृहस्थ हैं तो आप जीवन रूपी रथ के सम्यक् संचालन के लिए इन सूत्रों को जीवन में प्राथमिकता दो । अपना जीवन चलाने के लिए तुम्हें आजीविका की आवश्यकता तो है ही किन्तु अर्थोपार्जन न्याय पूर्वक करो, अन्यायपूर्वक अर्थोपार्जन करने वाले कोई पुरुषार्थ सम्यक् फलदायी नहीं होते । न्यायोपार्जित धन का भी भोग - उपभोग मर्यादा पूर्वक ही करना चाहिए क्योंकि अमर्यादित भोग उपभोग भी अन्यायोपार्जित धनकी तरह दुर्गति का कारण है। तीसरी महत्वपूर्ण बात यही है कि हर गृहस्थ को दान देते समय उदारता का परिचय देना चाहिए इससे पूर्व बद्ध पाप कर्मों की निर्जरा होती है और लक्ष्मी स्थिरता को प्राप्त होती है। जब लगे कि जीवन का अंत समीप है तब उस जीवन में अर्जन किये हुए धन का बिना विचार त्याग कर देना चाहिए क्योंकि सर्वस्व त्याग किये बिना उत्तम समाधिमरण असंभव है। ये चार सूत्र जीवन में चार चांद लगाने वाले चार सिद्धान्त की तरह परम उपयोगी हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

52

''परमात्म पद की फसल''

जिस प्रकार दीमक फसल को नष्ट कर देती है उसी प्रकार तृष्णा इंसान के सुख को नष्ट कर देती है। जिस प्रकार घुन (घु - घुस कर, न - नष्ट करे वह घुन कहलाता है) अनाज को अन्दर से खोखला कर देती है वैसे ही चिन्ता मनुष्य को गुणों से खोखला कर देती है। जिस प्रकार खरपतवार की अधिकता फसल को नष्ट कर देती है - वैसे ही लोभ लालच से किये / अनावश्यक कार्य मनुष्य की मनुष्यता नष्ट कर देते हैं। जिस प्रकार अति उष्णता फसल को जला देती है उसी प्रकार क्रोधादिक अग्नि इंसान की अच्छाईयों को जला देती है। जिस प्रकार टिड्डी दल से फसल नष्ट हो जाती है उसी प्रकार बेईमानी व बदनीयत से मानवता या मानवीय गुण नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार उत्तम फसल के लिए उत्तम भूमि, उत्तम बीज, श्रेष्ठ खाद, समयानुकूल हवा व धूप, पर्याप्त जल सिंचन एवं जंगली जानवरों से सुरक्षा जरूरी है उसी प्रकार इंसान रूपी बीज से परमात्मा रूपी फसल प्राप्त करने के लिए उत्तम संगति रूपी उत्तम भूमि, श्रेष्ठ कुल रूपी उत्तम बीज, सुसंस्कारों की खाद, धर्म ध्यान की वायु, बारह भावना की वायु, प्रतिकूलताओं की धूप, सम्यक्ज्ञान रूपी अमृत का सिंचन भी बहुत जरूरी है अन्यथा परमात्म पद की फसल प्राप्त नहीं की जा सकती।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

53

''शांति खुद में''

जिसने अपने मन को पंचेन्द्रिय के विषयों से हटा लिया है तथा कषाय भावों को शांत कर दिया है अशुभ परिणामों का पूर्णतः त्याग करके धर्मानुष्ठान रूप प्रवृत्ति में संलग्न है, किसी भी वस्तु या व्यक्ति के प्रति किंचित् भी आसक्ति नहीं है, मन तत्व चिंतन में एकाग्र है, आत्मानुभूति करते हुए आनंद में सराबोर है, लीन हैं ऐसा योगी कही भी चला जाए (ग्राम में, नगर में, राजधानी में, वन में, भवन में, शमशान में या महलों में) सर्वत्र उसे शांति का अनुभव होगा क्योंकि शांति उसके अंदर में है। जब चित्त में शांति होती है तो बाहर भी सर्वत्र शांति ही प्रतीत होती है उसे कोई अशांत नहीं कर सकता । जब भी अशांति पैदा होती है हमारे अंदर से ही पैदा होती है। बाहर की अशांति अन्दर की शांति को भंग करने में असमर्थ है। यदि अन्दर में ही शांति नहीं तो कहीं भी भटकते रहो तुम्हें कोई शांति दे नहीं सकता, खुद में शांति को खोजो खुदा से मत माँगो । कर्मों की परतों को उखाड़ फेंकों, शांति का झरना अंदर से फूट पड़ेगा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

54

''माँ के मायने''

"माँ" शब्द का अर्थ कोई ममता की मूर्ति कहता है, कोई क्षमा का सिंधु कोई मानवता की सरिता कहता है तो कोई सुसंस्कारों की पाठशाला, कोई माँ की गोद को स्वर्ग की भूमि कहता है तो कोई परमात्मा का आँगन । सभी ने अपनी - अपनी दृष्टि से अलग - अलग अर्थ किये हैं किंतु सोचता हूँ माँ का मायना होता है - माँ की माने लौकिक माँ, जन्मदात्री माँ शरीर को जन्म देती है शरीर का पोषण करती है बेटे / बेटी के लिए शारीरिक सुख चाहती है। बहु धन देकर अपने कर्त्तव्य की पूर्णता समझ लेती है और माँ की बात मानने से ये सब मिलता भी है। परमार्थ रूप विश्वासी माँ चेतना का परिचय कराकर धर्मरूपी / ज्ञान रूपी शरीर को जन्म देने वाली है। लौकिक तन को नष्ट कर शाश्वत चेतन / सिद्धत्व को देने वाली है। वह रत्नत्रय रूपी धन, मुक्तिरमा रूपी बहु को देकर ही संतोषित होती है। माँ ही सच्ची सुरक्षा कवच है, संवर्द्धक है पूर्व में भी थी आज भी है आगे भी रहेगी आप ऐसा माने और माँ की पूरी - पूरी बात मानें और स्व पर स्वरूप पहचानें, जानें किंतु कभी भूलकर भी माँ के सामने अपनी - अपनी न तानें ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

55

''निश्चय है माँ की साधनावत्''

तत्त्व को समझने के लिए निश्चय और व्यवहार दोनों ही साधन हैं, साध्य हैं मंजिल की प्राप्ति स्वरूप प्रमाण की प्राप्ति । निश्चय कम और व्यवहार ज्यादा दिखता है। निश्चय माँ के समान है व्यवहार पिता के समान है। माँ के बिना पिता का पुरुषार्थ वंश वृद्धि नहीं कर सकता तो पिता के बिना अकेली माँ किसी संतान को जन्म नहीं दे सकती । दो निमित्तों से होने वाला कार्य कभी एक निमित्त से नहीं हो सकता । निश्चय का कार्य माँ की कुक्षि में गर्भ वृद्धि की तरह है, व्यवहार का कार्य पिता की तरह संवर्द्धन है। जिस प्रकार उपादान के बिना निमित्त अकेला कार्य नहीं कर सकता उसी प्रकार निमित्त के बिना उपादान में कार्य नहीं हो सकता । कार्य अपने आप नहीं होता करना पड़ता है। व्यवहार कार्य करते हैं निश्चय में स्वतः क्रिया होती है, किंतु व्यवहार के उपरांत ही । निमित्त का सम्यक्, समायोजन करना भी व्यवहार है, उपादान में अंतर्वृद्धि ही निश्चय के समान है। निश्चय व व्यवहार रूपी दोनों नेत्रों का समीचीन उपयोग कर लक्ष्य को देखो। आत्म तत्त्व / शुद्ध स्वभाव रूपी मंजिल को पाओ, इसी में दोनों नय रूपी पगदण्डी या मार्ग की सार्थकता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

56

''चरमदशा ही परमदशा''

आत्मा की चरम अवस्था ही परम अवस्था है। वह है सिद्ध शुद्ध दशा ।

उस चरम परम अवस्था की प्राप्ति सत् कर्म करने से तथा धर्म करने से ही संभव है। सत् कर्म व्यवहार धर्म है, निष्कर्म (निर्विकल्प ध्यान) निश्चय धर्म । चरम अवस्था में परम शर्म है वही परम धर्म है। जब आत्मा नर्म हो जाती है तो उसे शर्म की प्राप्ति हो जाती है व जब गर्म हो जाती है तो नर्क की प्राप्ति होती है जिससे बुद्धि में भ्रम (भरम) पैदा हो जाता है। बुद्धि का भ्रम - भव का कारण है। धर्म का क्रम पूर्वक ग्रहण देह विग्रह का कारण है अथवा आत्म रमण का साधन है। आत्म रमण की साधना भव भ्रमण की नाशक है, चित्त की विकाशक व केवलज्ञान की प्रकाशक है। आत्मानुशासक बन विश्व प्रकाशक - कर्म विनाशक अवस्था को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करो, डरो मत, तम से तरो, मुक्ति रमा को वरो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

57

''वर्तमान से वर्द्धमान''

भूत को नहीं अभूत को देखो, क्योंकि भूतकाल तो भूत की तरह परेशान करने वाला है। अतीत की अच्छाईयाँ स्वप्न की तरह हैं उनसे अब कुछ भी सिद्ध होने वाला नहीं है, बुराईयों के गीत गाने से कोई लाभ नहीं अतः भूत को कपूत या यमदूत मानकर भभूत की तरह छोड़ दो । हाँ वर्तमान काल ही ढाल की तरह है अतः उसकी संभाल आवश्यक है, वर्तमान में जीने वाला ही वर्द्धमान, महान, यशमान, विद्यावान्, धनवान, गुणवान, सच्चा इंसान और भगवान् भी बन जाता है। अतः आज को सुधारो, आज को निहारो, आज को संभालो,आज को सुधारना है जो आज को सुधारता है उस पर दुनिया को नाज है, आज का सुधार ही सम्यक् जीवन का राज है इस राज में ही आत्मा का साम्राज्य है। अतः भविष्य बाज उड़ाने से अतीत की खाज खुजाने से बाज आओ, मान जाओ, ताजगी का ताज पहनो महाराज बनो, मुनिराज बनो, जिनराज बनो, आत्म काज में सनो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

58

''बचाओ अपने आप को''

आप लोग माता - बहिनें रसोई में बहुत सार - संभाल करती है। कहीं दाल को बचाती हैं, कहीं सब्जी को, कभी हलुआ को तो कभी खीर को कभी पकवानों को तो कभी मिष्ठानों को बचानें में लगी हैं कि ये चीजें बिगड़ न जायें । पुरुष वर्ग मकान को, दुकान को,कारखाने को, गाड़ियों को, कपड़ों को, आभूषणों को, सेहत को, वचनों को, व्यवहार को संभालने में लगे हैं। कभी रुपये पैसों को बचाते हैं, कभी रोग से शरीर को बचाते हैं। किन्तु कुसंस्कारों से बच्चों को बचाने में प्रमादी क्यों बन जाते हैं, वचनों का दुरुपयोग क्यों करते हैं, अच्छे वचन बोलकर या सद्व्यवहार कर अपने व्यक्तित्व को बचाने में भूल क्यों कर जाते हैं? अनावश्यक विचारों की लहर मन में उठती रहती है जिससे मन के सरोवर में गंदगी जम नहीं पाती, मन मलिन हो जाता है? हम असद् विचारों से मन को बचाने में क्यों चूक जाते हैं? तथा आत्मा को भी कर्म बंधन से क्यों नहीं बचा पाते? विषय वासना के बंधन में कैसे फँस जाते हैं? क्या हमें समय रहते हुए अपनी आत्मा का बचाव नहीं कर लेना चाहिए? श्वाँसो का दुरुपयोग किये बिना जीवन को संयम से श्रृंगारित नहीं कर लेना चाहिए ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

59

''करो सहायता कभी अपनी भी''

बचाओ, बचाओ, बचाओ शब्द कान में पड़ते ही व्यक्ति दूसरों को बचाने के लिए दौड़ना चाहता है, जहाँ से शब्दों की पुकार आ रही थी वहाँ जाकर उसे बचाने का प्रयास भी करता है, देखता है वह दुःखी कैसे है - क्या कोई वाहन दुर्घटना हो गई या नदी में बाढ़ आ गई या नाव पलट गई या अग्नि काण्ड हुआ या मकान की छत गिर गई या दीवाल टूट गई या नभ से अग्नि की वर्षा को गई, भूकम्प आ गया या कोई ज्वालामुखी फट गया या महामारी फैल गई इत्यादि लोग दुःखी क्यों हैं, क्या कोई किसी को पीट रहा है? हमारा उपयोग प्रायः बाहर की ओर या दूसरों की ओर रहता है किन्तु हम खुद को नहीं देखते कि हमारी कितनी दयनीय दशा है। हम कषायों की अग्नि में झुलस रहे हैं कर्मों की मार सह रहे हैं, पाप कर्म हमें कुचल रहे हैं हमारे दुर्भाव या कुभाव हमारे जीवन की नाव को उलट रहे हैं, किन्तु फिर भी हम अचेत पड़े हैं, अब चेत जाओ और खुद को बचाने के लिए शांति से बैठ जाओ बाहर नहीं अंदर की और दौड़ जाओ, पर को छोड़ते जाओ स्व की ओर मुड़ते जाओ - आत्मा की रक्षा करो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

60

''मंदिर कब बनेगा''

जहाँ दो वकील बहस कर रहे हों सामने मजिस्ट्रेट बैठा हो, गवाह व सबूत हो उसे अदालत कहते हैं। जहाँ पर रोगी का उपचार किया जा रहा हो, डॉ. मरीज को औषधि व पथ्यापथ्य की सलाह दे रहा हो वह अस्पताल / क्लीनिक होता है। जहाँ वस्तुएँ खरीदी जा रही हैं बेची जा रही हैं, वह दुकान है। जहाँ वस्तुओं का निर्माण हो रहा है वह कारखाना है। जहाँ पुष्प खिल रहे हैं वह पुष्प वाटिका होती है। जहाँ फलों से युक्त वृक्षों का समूह है वह उद्यान है। जहाँ फसलें उगाई जाती हैं, फसलें लहरा रही हैं वह खेत है। जहाँ युद्ध हो रहे हैं वह रणभूमि कहलाती है। जहाँ जीव वध हो रहा हो वह वधशाला है। जहाँ स्वर्णाभूषण क्रय विक्रय हो रहे हैं वह स्वर्णकार या सर्राफे की दुकान है। जहाँ रत्नों का क्रय - विक्रय (लेन - देन) हो रहा है वह जौहरी की दुकान है। जहाँ साधक साधना करते हैं वह तपोवन या साधकों का आश्रम कहलाता है, किन्तु जहाँ भगवान् विराजमान होते हैं और भक्तगण, उपासकगण पूजा, भक्ति व अर्चना आदि में संलग्न हो वह मंदिर कहलाता है अर्थात् मन में जब प्रभु परमात्मा विराजमान हो जाये तभी तो मन मंदिर कहलायेगा । इसके अतिरिक्त मन में और कुछ विराजमान है तब तक वह मंदिर नहीं कहा जा सकता । अतः मन को मंदिर बनाने के लिए प्रभु परमात्मा की स्थापना करना नितांत आवश्यक है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

61

''आशीर्वाद का प्रसाद''

यह तो निर्विवाद सत्य है कि जिस पुण्य पुरुष को माता - पिता व गुरु का आशीर्वाद रूपी प्रसाद मिल गया है, जो प्रभु, गुरु व माता - पिता को याद करता है, जिसके जीवन में पुण्य की खाद है, जिसकी गुणरूपी फसल आबाद है जिसका जीवन धर्म संवाद से सहित निर्विवाद है,जिसकी कथनी में स्याद्वाद है, जिसके पास प्रमाद नहीं प्रमोद है, जिसके चित्त पर विकारों का बोझ नहीं शोध है, जिसके बंधन नहीं प्रभु वंदन है उसके जीवन में क्रंदन नहीं गुरुरज रूपी चंदन है, जो मुनियों का लघु नंदन (परम भक्त) है वही आबाद है, आजाद है वही व्यक्ति आत्मा का स्वाद लेने में समर्थ होता है। उस काबिल पुरुष को ही दुनियाँ दाद (प्रशंसा, धन्यवाद) देती है। आप भी प्रभु भक्ति, गुरु सेवा व माता -पिता की आज्ञापालन कर धन्यवाद के पात्र बनें, मुक्ति के प्रसाद के अधिकारी बनें ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

62 ''स्त्री के विभिन्न रूप''

जिस प्रकार सुन्दर कन्या मन को लुभाने वाली व आनन्द की स्रोत होती है। उसी प्रकार सम्यक् दर्शन भव्य जनों के चित्त को आकर्षित करने वाला होता है। जिस प्रकार यौवन से परिपूर्ण युवती रमण करने के योग्य होती है उसी प्रकार सम्यक् ज्ञान में रमण करने के योग्य है। रमणी के साथ रमण करते हुए कोई चिंता नहीं होती समय का अहसास नहीं होता उस समय कोई अन्य वेदन भी नहीं होता उसी प्रकार ज्ञान में चित्त की लीनता ही निराकुल व निर्विकल्प ध्यान का कारण बन जाती है वह आनन्द स्रोत होता है उस ज्ञान से ही सुख के द्वार उद्घाटित होते हैं। जिस प्रकार वृद्धा स्त्री रक्षा करने वाली पवित्र रूपा मानी जाती है (वृद्धा नारी ईश्वरी) उसी प्रकार सम्यक् चारित्र भी आत्मा की रक्षा करने वाला है, वह वृद्धा की तरह पवित्र व उपासनीय होता है। वृद्धानारी पति सेवा में व भावनाओं में युवतियों से बहुत आगे होती है उसी प्रकार सम्यक् चारित्र आत्म कल्याण का साक्षात् हेतु है, पापों से बचाने वाला है। यह संयम ही आत्मा का संरक्षक होता है, इसके साथ ही तपों में प्रवृत्ति होती है। तप वृद्धा की पुत्री अर्थात् बहिन की तरह पूज्य है तथा वृद्धा के पिता की तरह सम्मानीय है। भक्ति उस चारित्र रूपी वृद्धा की माँ (नानी) की तरह सुखकर, शांतिकर व आनंद का सदन है। आत्मा की उन्नति के लिए आवश्यक सभी गुण स्त्रीलिंग (नारी रूप) प्रतीत होते हैं जैसे क्षमा, दया, विनम्रता, सहजता, ईमानदारी, सत्यता, वीरता, धीरता, प्रभुता, कृतज्ञता, समता इत्यादि

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

63

''एक भी उदाहरण नहीं मिला''

किसी भी देश का इतिहास उठाकर देखो उसमें राजा, राजकुमारों के राज्य शासन के संचालन का कथन मिलेगा । प्रायः करके अधम राजाओं के इतिहास रक्तरंजित व कलंकित ही रहे हैं। किसी शासक ने पिता को मार कर राज्य छीना तो किसी ने भाई को भगाकर या हत्याकर राजगद्दी हथिया ली तो किसी ने पुत्र को मौत के घाट उतारा या देश निकाला दिया, कोई कुशासक माता - पिता का हंता बना, किन्तु आज तक के इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण हमारे पढ़ने में नहीं आया जिसमें किसी कन्या ने माता की, पिता की या भाई की हत्या कर राजगद्दी हथिया ली हो । हाँ ऐसे उदाहरण तो मिल जायेंगे जहाँ कन्याओं ने प्राणों की बाजी लगाकर माता - पिता के प्राणों की रक्षा की या पति का विरोध व अत्याचार सहन करके भी माता - पिता की सेवा की । कई बार तो ऐसा भी देखा गया जहाँ चार - चार योग्य पुरुषों के होते हुए भी वृद्ध पिता पुत्री के यहाँ बुढ़ापा बिताने पहुँचे या बेटी स्वयं सेवा करने आई । अन्यायी अत्याचारी पितृघाती पुत्रों के उदाहरणों की कमी नहीं है और सेविका पुत्रियों के उदाहरणों की भी कमी नहीं है। आपके मस्तिष्क में भी कई उदाहरण होंगे फिर भी मानव पुत्री से ज्यादा पुत्र को महत्व क्यों देता है? मैं समझता हूँ कि समझदार वही है जो दोनों को समान समझे या कन्या को कन्हैया से ज्यादा महत्त्व दे ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

64

''खुद का शहंशाह''

सुखद जीवन की सम्प्राप्ति हेतु छह सूत्रों को जानना, मानना व पालन करना बहुत जरूरी है अन्यथा जीवन दुःखद, कूटस्थ व अभिशापवत् ही प्रतीत होता है। प्रथम - **उत्साह** - जीवन उत्साह, उल्लास व उमंग से परिपूर्ण हो तभी आनंदानुभूति हो सकती है। उत्साह युक्त अल्पकाल का जीवन निरुत्साहिक दीर्घकालिक जीवन से श्रेष्ठ होता है। उत्साह से अंतरंग प्राण - प्राणवायु पाते हैं, उत्साह प्राणों का भी प्राण कहा जाता है। दूसरा - **प्रवाह** - जीवन गतिशील होना चाहिए वही उन्नति व अवनति के मुकाम देख पाता है। गतिशील सरिता ही सागर रूप हो जाती है। उसी प्रकार प्रवाहशील वह आत्मा परमात्मा तक की यात्रा कर सकती है। तीसरा - **सलाह** - जीवन में कोई भी कार्य करो महापुरुषों की सलाह से करो, सलाह लेने में कभी कंजूसी मत करो तथा न ही अपनी बेइज्जती महसूस करो । चतुर्थ - **सुराह** - जीवन में कितनी भी अनुकूलता या प्रतिकूलताएँ हों कभी भी सदाचार युक्त सम्यक् मार्ग का त्याग न करो अच्छी राह ही सुखद यात्रा की मंजिल प्राप्त कराने का कारण है। पंचम - **गवाह** - अपना जीवन ऐसा बनाओ कि वह स्वयं गवाह रूप हो जाये, अपने चारित्र / सदाचार का प्रमाण देने के लिए गवाह / सबूत / साक्षी की आवश्यकता न पड़े । षष्ठम - **कर्मदाह** - अरे महानुभाव ! जीवन में ऐसा कार्य करो जिससे पाप कर्मों की होली जल जाये और खुद का शहंशाह बन जाओ । तू न गुमराह हो, न लापरवाह हो, न आह - आह कर, न वाह - वाह, विवाह करके तबाह भी न होना ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

65

''हँ सतो सकता है रो नहीं सकता''

पुण्य के उदय में व्यक्ति तुम्हारे साथ हँस सकता है, बस सकता है, तुम्हें सह सकता है, तुम्हारे पास रह सकता है। पुण्य उदय में शत्रु भी मित्र बन जाता है, विष भी अमृत बन जाता है, बुराई भी अच्छाई के रूप में स्वीकार कर ली जाती है, प्रतिकूलता भी अनुकूलता में ढल जाती है, पाप कर्म भी पुण्य रूप में संक्रमित हो जाता है, पुण्य प्रकृतियों की आयु बढ़ जाती है तथा पाप प्रकृतियों की आयु घट जाती है, असाता भी साता रूप फल देता है किन्तु पाप के उदय में मित्र भी शत्रु हो जाते है, औषधि रोग बढ़ाती है, अमृत भी मौत का कारण बन जाता है, अनुकूलता प्रतिकूलता का बाना पहन लेती है। पाप प्रकृतियों की आयु बढ़ने लगती है पुण्य प्रकृतियों का मानो अकालमरण ही हो जाता है। पुण्य प्रकृतियाँ पाप रूप बदल जाती हैं। जिसकी सत्ता होती है तब कर्म रूप विधायक भी (जो निर्दली या विपक्षी थे) उसी रूप बदल जाते हैं। एक बात जीवन में याद रखना पुण्य के उदय में सब तुम्हारी प्रसन्नता व मुस्कराहट में शामिल होंगे किंतु कोई भी साथ रोने में शामिल नहीं होगा । अपना दुःख भोगते हुए व्यक्ति को अकेले ही रोना पड़ता है, खुद को नींद आये तो खुद को ही सोना पड़ता है वैसे ही अपने अच्छे बुरे कार्यों का भार भी खुद को ही ढोना पड़ता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

66

''जैसा चाहो वैसा करो''

एक बालक टूटे - फूटे बर्तनों को और फटे - पुराने कपड़ों को इकट्ठा कर रहा था जब उससे पूछा कि तुम ऐसा क्यों कर रहे हो तो वह बोला जब मेरे माता - पिता वृद्ध हो जायेंगे तब मैं इन्ही बर्तनों में इन्हें भोजन दूँगा और ये वस्त्र इनके पहनने के काम आयेंगे उस समय मैं तो अपनी पत्नी के साथ विदेश यात्रा में रहूँगा। उससे पुनः पूछा कि तुम ऐसा भी क्यों करना चाहते हो, जब तुम्हारे पास पर्याप्त धन व भोगोपभोग की प्रचुर समुचित सामग्री होगी तब भी तुम अपने माता - पिता को त्यागने व फैंकने योग्य वस्तु ही क्यों दोगे? वह बोला मैं अपने कुल / वंश की परम्परा को तोड़ना नहीं चाहता। मैंनें अपनी आँखों से देखा कि मेरे माता - पिता मेरे दादा - दादी के साथ कैसा व्यवहार करते हैं। जैसा व्यवहार वे कर रहे हैं वही तो उन्हें मिलना चाहिए। संसार का भी तो यही नियम है जैसा देते हैं वैसा पाते हैं तब उस बालक के माता - पिता ने अपनी गलती स्वीकार कर अपने माता - पिता की सच्ची सेवा करना शुरू कर दिया। बालक ने अपने माता - पिता को बोध दिया कि उन्हें माता - पिता की सेवा कैसे करनी चाहिए किन्तु आज भी कई परिवार ऐसे हैं जहाँ पर वृद्धों का सम्मान नहीं है वे युवा और युवती ये सोच ले कि वृद्ध होने पर उन्हें भी वही मिलेगा। यदि वे अपने प्रति अच्छा व्यवहार चाहते हैं तो मेरा उनसे कहना है कि वे आज ही दूसरों के प्रति अच्छा बनने का संकल्प ले लें ।

67

''दर्पण में अर्पण''

दर्पण में अर्पण करने पर ही खुद का बिम्ब प्रतिबिम्बित होता है। जैसा समर्पण वैसा ही प्रतिबिम्ब दर्शन होगा। दर्पण का अर्थ है दर्प का नष्ट हो जाना। जब तक जीवन में दर्द / अहंकार / मद है तब तक अर्पण या समर्पण संभव ही नहीं है। समर्पण की दुनिया का भी एक अलग ही आनंद है वहाँ अहंकार कभी भी संभव नहीं है। जिस प्रकार गाल फुलाकर हँसना, दौड़ते हुए सोना, पानी में तैरते - डूबते हुए भी न भीगना, अग्नि के समीप बैठकर गर्मी के ताप से बच जायें, पाप करते हुए सुख पा लेना, बालू से तेल निकालना, जल मंथन से घृत प्राप्त करना, ये सब बाते संभव नहीं वैसे ही समर्पण के बिना स्वकीय स्वरूप की प्राप्ति संभव नहीं। देव दर्शन करते समय यदि हमारा प्रभु के प्रति समर्पण है तभी जिनबिम्बों में भगवान् दिखते हैं अन्यथा धातु व पाषाण की मूर्तियाँ ही दिखती हैं। महानुभाव ! आज से सच्ची श्रद्धा, भक्ति व समर्पण के साथ जीना प्रारंभ कर दो तुम्हें आज से मुक्ति पाने की शक्ति का मिलना प्रारंभ हो जायेगा तथा स्वकीय आनंद से भी साक्षात्कार कर सकोगे।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

68

''समाज के दर्पण''

आप लोग घर में दर्पण रखते हैं क्यों? क्या दर्पण देखने के लिए? नहीं, दर्पण देखने के लिए दर्पण नहीं रखे जाते अपितु दर्पण में अपना चेहरा देखने के लिए दर्पण रखते हैं, चेहरा देखने के उपरान्त चेहरे पर दिखती कमी को दूर किया जाता है, अपने चेहरे पर कालिमा आदि है तो दर्पण के माध्यम से उसे दूर किया जाता है। यदि हाथ में दर्पण रखकर अपने चेहरे की गंदगी साफ नहीं की तो दर्पण रखना व्यर्थ है, इसी तरह साधु संत भी समाज के दर्पण हैं। भव्य जीवों को साधु संत रूपी दर्पण रखना जरूरी है, किंतु इसलिए कि समाज या व्यक्ति उसमें अपनी छवि निहार लें और केवल निहारे ही नहीं अपने आप को सुधार लें, संवार लें,निखार लें, बुराई से स्वयं को निवार (हटा) लें । जिस समाज में साधु संत रूपी दर्पण नहीं होते उस समाज के चेहरे बदसूरत या श्याम वर्ण वाले, देखने के अयोग्य ही प्रतिभासित होते हैं। संत के चरणों में संसार का / दुःख का अंत दिखाई देता है, मोक्ष पंथ दिखाई देता है। जीवन का सम्यक् अंत (समाधिमरण) दिखाई देता है अतः साधु संत रूपी दर्पण के साथ रहो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

69

''शक का इलाज नहीं''

संसार में जितने भी रोग हैं उन सबकी संसार में अनेक - अनेक औषधियाँ भी हैं किन्तु शक का कोई इलाज नहीं है, लक का कोई मिजाज नहीं हैं, यहाँ पर हक का रिवाज नहीं है,आत्मा में दराज नहीं है, यह पुद्गलों का ढेर तेरा स्वराज नहीं है अर्थात् रोग का इलाज हो सकता है किन्तु जो रोगी न होते हुए भी अपने आपको रोगी मान बैठे उसे निरोगी कौन कर सकता है? शक रूपी रोग का उपचार खुद के पास तो है किन्तु खुदा के पास नहीं है। लक (भाग्य) का मिजाज कोई नहीं जानता, कब किस मनुष्य के भाग्य का उदय हो जाये, भाग्य रंक को राव तथा राव को रंक भी बना सकता है। इस संसार में हमारा कुछ भी हक (अधिकार) नहीं है, हमारा हक हमारी आत्मा पर ही है अन्य पदार्थों पर नहीं है। आत्मा में कोई दरवाजा (अलमारी) नहीं है। जहाँ तुम भौतिक धन को छुपाकर ले जा सको, भौतिक धन तो यहीं छोड़ना पड़ता है। हमारा स्वराज्य आत्मा का वैभव ही है पुद्गलों का ढेर नहीं, इस राज को जानकर स्व साम्राज्य के भोगी बनो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

70

''साक्षी भाव''

अपना जीवन मझधार के माँझी बनकर नहीं किनारे के साक्षी बनकर जीओ, जो लहर का तिनका बनता है वह भंवर में पड़ा भ्रमता है किन्तु जो तट की तरह तटस्थ रहता है वही सुरक्षित रहता है। जो नदी की लहर बनता है उसके जीवन में अवश्य ही उतार - चढ़ाव आते हैं किन्तु जो राग - द्वेष की कल्लोलों से बचना चाहता है उन्हें समता भाव में रहना चाहिए । तट नदी प्रवाह के साथ बहते नहीं हैं, नदी के दोनों किनारे आपस में प्रतिकूल होने पर भी नदी के अनुकूल ही होते हैं । पाप - पुण्य एक दूसरे के प्रतिकूल होने पर भी संसार परिवर्द्धन के अनुकूल हैं। दोनों के प्रति समभाव मोक्ष के अनुकूल है।साक्षी भाव ही आत्मानुभाव का साधन है,किन्तु वह बिना साधना के प्राप्त नहीं होता अतः साक्षी भाव की साधना करो यही आत्म दर्शन का कारण है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

71

''काश ऐसी व्यवस्था पीछे भी''

किसी बड़े नेता या मंत्री के आते ही नगर की व्यवस्था ठीक हो जाती है, वह नगर पूरी तरह साफ सुथरा हो जाता है, सड़क, पानी व बिजली की व्यवस्था ठीक हो जाती है। काश ! ऐसी व्यवस्था नेता, मंत्री के पीछे भी रहे, विद्यालय में फ्लाइंग स्कोट (उड़नदस्ता) आता है, चैकिंग करता है, विद्यार्थी व अध्यापक सावधान हो जाते हैं, परीक्षार्थी व परीक्षक ईमानदारी से अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। नकल बेईमानी व गंदी हरकत वहाँ नहीं हो सकती । पुलिस के सक्रिय होते ही डाकू व चोर जंगलों में भाग जाते हैं अथवा आत्म समर्पण कर देते हैं। नगर में चोरियाँ, लूटपाट, डाका डलना अन्य हत्या आदि के मामले सुनने में नहीं आते सब जगह शांति हो जाती है, इसी तरह नगर में साधु संतों के आते ही श्रावक प्रभु पूजन, स्वाध्याय, गुरुसेवा, आहारदान में संलग्न हो जाता है, उसका चौका चूल्हा शुद्ध हो जाता है, रात्रि भोजन, जमीकंद, अभक्ष्य भक्षण, बाजार आदि की अशुद्ध वस्तुएँ घर मे आना बंद हो जाती हैं। चौका अत्यन्त शुद्ध व सात्विक आहार हो जाता है। काश ! ऐसी व्यवस्था साधुओं के नगर में न होने पर भी बनी रहे, तब क्या निश्चित रूप से श्रावक व साधु का कल्याण नहीं होगा?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

72

''पापोदय में शांति से धर्म ध्यान करो''

अहो महानुभाव ! पाप कर्म के तीव्र उदय में तुम शांति से क्यों नहीं बैठ जाते, पाप का तीव्र उदय तुम्हारे कोई भी काम नहीं बनने देता, इतना ही नहीं कई बार तो बने बनाये काम बिगाड़ भी देता है। तीव्र आंधी या तूफान के समय आप सीना तान कर खड़े नहीं होते अपितु आंधी व तूफान की ओर से पीठकर बंद होने की इंतजारी में शांति से बैठ जाते हैं। तीव्र वर्षा के समय भी अपना बचाव करते हुए अपने शरीर को संकुचित कर बैठ जाते हैं। अति तीव्र गर्मी व सर्दी होने पर भी अपने शरीर को सिकोड़ (संकीर्ण) कर शांति से बैठ जाते हैं अनुकूलता होते ही खड़े होकर चलना अथवा अपना कार्य करना प्रारंभ कर देते हो, इसी तरह पाप कर्म के तीव्र उदय में प्रभु भक्ति, गुरुसेवा, दान पूजा, व्रत उपवास, आदि पुण्य कार्यों में संलग्न रहना चाहिए, अपना मनोबल कभी नहीं गिराना चाहिए। तूफान या आंधी की चोट खाकर धराशायी होने की अपेक्षा शांति से बैठ जाना ही श्रेष्ठ मार्ग है, कविवर रहीमदास ने लिखा भी है

रहिमन चुप है बैठिये देख दिननि को फेर ।
जब नीके दिन आवहि बनत लगे न देर ।।

और भी कहा है -

धीरे – धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय ।
माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आये फल होय ।।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

73

''चुप रहना भी सीखिये''

यदि सामने वाला व्यक्ति क्रोध में आग बबूला होकर आपसे अनुचित व्यवहार करता है, आपके एक शब्द कहते ही वह और ज्यादा क्रोधी होता जा रहा है, वह अपने विवेक को खोकर तुम्हारा नाश करने पर तुला है, तो उस समय तुम शांत हो जाओ, एक भी शब्द नहीं बोलो, वह थोड़ी - बहुत देर तक अनर्गल वचनालाप करेगा बाद में शांत हो जायेगा। तुम्हारे क्रोध को बढ़ाने का प्रयास करेगा, तुम्हारे हृदय में क्रोध की अग्नि ज्वाला प्रकट करना चाहेगा, तुम्हारे गुण रूपी ईंधन को जलायेगा, उग्र स्वभावी पेट्रोल, डीजल व मिट्टी के तेल को जलायेगा और तुम्हारे व्यक्तित्व को जलाना ही उस क्रोधी की विजय है, उसकी मनोभावना की पूर्ति है इसमें तुम्हारा ही सर्वनाश है। अतः तुम्हारी विजय इसी में है सामने वाला जितना तीव्र क्रोध करे तुम उतने अधिक शांत हो जाओ, तिनकों की या घास की अग्नि समुद्र के जल को नहीं जला सकती तथा जिस टंकी में पानी ही नहीं उसकी टोंटी को कितना भी घुमाया जाये पानी नहीं निकलेगा । अर्थात् हमें हर हाल में शांत रहना चाहिए इससे क्रोधी की शक्ति घटेगी आपकी शक्ति बढ़ेगी । ध्यान रखों एक हाथ से ताली कभी नहीं बजती, दूसरे हाथ के सामने आते ही ताली बजना शुरु हो जायेगी अतः तुम उस स्थान से दूर रहो। बिना निमित्त के क्रोधी का क्रोध स्वतः शांत हो जायेगा । कहा भी है -

क्रोधी उसका क्या करे, जहाँ रूप सरवाय ।
बिना तृणन अग्नि तो सहजहिं ते बुझ जाय ।।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

74

''हमेशा अपनी शर्तों पर नहीं''

नदी सदैव एक सी रफ्तार से नहीं बहती कभी उतार कभी चढ़ाव उसके प्रवाह को प्रभावित करते ही हैं। हवा सदा एक सी नहीं बहती, धूप सदैव एक सी नहीं होती इनके प्रभाव में भी सदा परिवर्तन होता रहता है। मौसम एकसा नहीं रहता बदलता रहता है। प्रकृति भी सदा एक सी नहीं रहती इन्द्रधनुष में भी सप्त रंग दिखाई देते हैं, इसी प्रकार मानव के जीवन में सदैव एक ही तरह का कर्म उदय में नहीं आता कभी पाप कर्म का तीव्र उदय होता है तो कभी पाप कर्म का तीव्रतर उदय तो कभी उसी पाप कर्म का तीव्रतम उदय होता है तो कभी पाप का मंद कभी मंदतर तो कभी उसी पाप का मंदतम उदय होता है। इन छह भेदों के मध्य भी असंख्यात - संख्यात भेद होते हैं। कभी पुण्य कर्म का तीव्र, कभी तीव्रतर तो कभी तीव्रतम उदय होता है तो उसी पुण्य कर्म का मंद, मंदतर या मंदतम उदय भी होता है। कभी बिना पुरुषार्थ, अल्प पुरुषार्थ से भी सफलता मिल जाती है तो कभी कठिन पुरुषार्थ से सफलता मिलती है, तो कभी ऐसा भी होता है कि पुरुषार्थ करने पर भी सफलता नहीं मिलती । हे महानुभाव ! जीवन सदैव अपनी शर्तों पर नहीं जिया जा सकता, उसमें दूसरो की शर्तों को भी स्वीकार करना पड़ता है।

न सदैव धूप रहती है न सदैव छाँ व
न सदा सुबह रहना है न सदा शाम ॥

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

75

''हम जरा बदल लें वृत्ति नहीं प्रवृत्ति भी''

शाश्वत सुख शांति चाहने वालों को खुद व खुद की वृत्तियों को बदल लेना चाहिए क्योंकि जो प्रवृत्ति आज आप कर रहे हैं वह अनादि काल से चल रही है। यदि उस वृत्ति से सुख शांति मिल सकती है तो वह कब की मिल गई होती किन्तु आप और हम उसे आज तक नहीं पा सके अतः हमें अपनी सोच बदल देना चाहिए वह तभी संभव है जब हम आत्मा को अन्तर्जगत को जान सकें इसलिए श्रद्धा चक्षुओं को उद्घाटित करना होगा तथा अपने बंद कर्ण पटों को खोलना होगा जिससे जिनेन्द्र भगवान् की शुद्ध वाणी को सुन सकें उसमें कोई मिलावट न करें । हमें अपनी वृत्ति, प्रवृत्ति व प्रकृति को बदल लेना चाहिए । शरीर की क्रियायें, वचन का व्यवहार व मन का चिंतन भी बदलें । मिथ्यादृष्टि को सम्यक्दृष्टि में, अज्ञान को सम्यक्ज्ञान में व मिथ्या अनाचरण को सम्यक् आचरण में बदलें तब हम संसार मार्ग के नहीं मोक्ष मार्ग के पथिक बन जायेंगे और कर्मों से मुक्त हो शिवालय के वासी हो जायेंगे, दुःख के स्थान पर शाश्वत सुख - शांति के आलय हो जायेंगे ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

76

''पचपन से ज्यादा प्रभावी बचपन''

जीवन को यदि समीचीनता के साँचे में ढालना है तो हमें अच्छे संस्कारों से जीवन को श्रृंगारित करना चाहिए और यह प्रक्रिया जीवन के प्रारंभ से ही प्रारंभ कर देना चाहिए अथवा जब भी हम सुसंस्कारों का सही मूल्यांकन करना जान जाते हैं तभी से प्रारंभ कर देना चाहिए फिर समय की इंतजारी नहीं करना चाहिए । गीली मिट्टी के खिलौने जैसे चाहें वैसे बना सकते हैं सूखी मिट्टी से नहीं, छोटे पौधों को जैसा चाहे ढाल सकते हैं बड़े पौधों को नहीं। पिघली धातु को किसी भी रूप में ढाला जा सकता है ठोस धातु को नहीं । कोरी स्लेट, पट्टी, कॉपी व डायरी पर यथेष्ट विषय लिखा जा सकता है लिखी हुई पर नहीं । खाली कैसेट या सी.डी. में यथेष्ट विषय रिकॉर्ड कर सकते हैं पहले से भरी हुई कैसेट या सी.डी को नहीं । इसी प्रकार अच्छे संस्कारों का बीजारोपण चित्त की भूमि में तब तक कर लेना चाहिए जब तक अनावश्यक घास - फूस, झाड़, झंक्खड़ या विष बीज नहीं उगे हैं, अर्थात् संस्कार पचपन से ज्यादा बचपन में प्रभावी होते हैं, सम्यक् पुरुषार्थ करके प्राप्त करो जिससे आपका सम्पूर्ण जीवन सुख व शांति के साथ व्यतीत हो सके ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

77

''मित्र कैसा हो?''

अपने जीवन को व्यवस्थित करने हेतु सम्यक् संचालन हेतु कम से कम एक मित्र अवश्य बनाओ । किन्तु मित्र सही मायने में मित्र हो स्वार्थी न हो चापलूस व अवसरवादी न हो । सच्चा मित्र वह होता है जो तुम्हारी मुस्कराहट के पीछे छुपी पीड़ा को जान सके, जो क्रोध के पीछे छुपे प्यार को पहचान सके, जो तुम्हारी खामोशी के पीछे छुपी मजबूरियों को या उदासीनता के कारणों को जान सके, तुम्हारे चेहरे से तुम्हारे भावों को जान सके, केवल जाने ही नहीं तुम्हें पापों से बचाकर धर्म के मार्ग में लगा दे, तुम्हारी गुप्त बातों को प्रकट न करे तुम्हारे गुणों को प्रकट करके तुम्हें प्रोत्साहित कर सके आपत्ति काल में सदैव साथ रहे । आवश्यकता पड़ने पर तुम्हारी आवश्यक वस्तु समय पर उपलब्ध करा दे, वही सच्चा मित्र है। वह मित्र ढाल की तरह हो जैसे युद्ध के समय ढाल रक्षा करने में आगे रहती है, अनुकूलता या शेष समय पीठ के ऊपर पीछे तलवार की तरह हो । युद्ध के समय रक्षा व शत्रु के हनन करने में आगे व शेष समय कमर के पीछे म्यान में रहे । या लोटा - डोरी की तरह हो जैसे लोटा अपना गला फँसाकर पानी ला देता है व रस्सी भी अपना साथ नहीं छोड़ती । उबलते दूध को अपना मित्र रूपी शीतल जल मिल जाता है तो वह शांत अन्यथा व्याकुल हो जाता है। सच्चे मित्र का चुनाव जल्दी से करो, मित्र सच्चा मिल जाये तो जीवन देकर भी मित्रता को निभाओ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

78

''हृदय के भाव चेहरे पर''

यदि दूध में घी है तो गर्म करते ही मलाई के रूप में ऊपर से दिखने लगता है, यदि पुष्प में गंध है तो अपनी सुगन्धि दूर से भी प्रदान कर देता है। यदि जल में शीतलता है तो वह अपनी शीतलता का अहसास दूर से करा देता है। सूर्य प्रकाश पुंज है तो उसका प्रकाश दूर से भी दृष्टिगोचर होता है, अग्नि की उष्णता का भान उसकी समीपता से ही बिना छुए ही हो जाता है। यदि किसी को वेदना है तो उसकी मुख मुद्रा अंदर की वेदना को व्यक्त कर देती है। चेहरे पर अंदर के भाव दृष्टिगोचर हो जाते है कि अंदर क्या है? प्रेम है या घृणा, कष्ट है या आनन्द, श्रद्धा है या स्वार्थपना, वासना है या वात्सल्य इत्यादि भाव चेहरे पर वैसे ही प्रकट हो जाते हैं जैसे लालटेन के जलने से उसका प्रकाश बाहर प्रकट हो जाता है। आकाश जब मेघाछन्न होता है तो प्रकृति स्वतः ही अपना रूप बदल लेती है। अतः चेहरे के भावों को छुपाने का प्रयास मत करो, हृदय को परिवर्तित करने का प्रयास करो, चीनी के डिब्बे पर मिर्ची लिख कर चींटी को धोखा नहीं दिया जा सकता खुद को ही ठग सकते हो चींटी को नहीं वह तुम्हारे लिखे को नहीं पढ़ती, वह तो गंध से ही वहाँ तक पहुँचती है। अतः मुखोटा नहीं अपनी बुरी आदतें बदलिये।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

79

"दूसरों की मात्र बुराई नहीं अच्छाई भी"

महानुभाव ! अब आप आशी (आशावान्) नहीं विश्वासी भी बनो, प्रवासी नहीं आत्म निवासी भी बनो, भोगों की दासी नहीं निज स्वभाव के प्यासी बनो, निराशी (निराशावान्) नहीं आत्म विकासी बनो, उदासी या हताशी (उत्साह रहित या नष्ट आशावान् अधैर्य) नहीं उदासी व हताशी के विनाशी बनो और आत्मा के शासी सम्राट बनो, कुपासी नहीं सुवासी और सुभाषी बनो, बनना ही है तो शिवपुर के वासी बनो। जरा सी बात नहीं कह सकते और जीवन में पूरी बात कभी कह नहीं सकते, नदी से कभी बह नहीं सकते पृथ्वी से क्षमाशील कभी बन नहीं सकते तो कम से कम अपने को तो सहना सीखो कभी - कभी दूसरों की अच्छाई भी तो करना सीखो। तालाब से गंदे बने हो तो नाले से ही कुछ बहना सीखो, कभी - कभी आँसू की तरह ही सही यथार्थ में बहना सीखो। अब तक पर में बहुत भटक चुके हो कम से कम अन्तर्मुहूर्त ही सही अपने स्वरूप में रहना सीखो। जैसा तुम अपने आपको कहते हो वैसे अंदर बाहर में कुछ तो सीखो। यदि तुम ऐसा कर सके तो कल तुम सुख के सागर बन जाओगे।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

80

"अपनी उपेक्षा क्यों?"

महानुभाव ! आप परवस्तु और अन्य प्राणियों का विशेष ध्यान रखते हो कि कहीं वह वस्तु खराब न हो जाये व्यक्ति बिगड़ न जाये किन्तु आप अपनी ओर दृष्टिपात क्यों नहीं करते? हमारी अपेक्षाएँ दूसरों पर आधारित हैं, हम दूसरों से सुख व शांति चाहते हैं, हम दूसरों में अपनी मंजिल खोजने का प्रयास करते हैं। जिस स्थान पर जो वस्तु नहीं है, उसे हम वहाँ खोजना चाहते हैं। जिसमें जो गुण नहीं है उसमें हम वह खोजना चाहते हैं, जिसकी जो पर्याय नहीं है उसकी पर्यायों में अन्य द्रव्य के गुणों को खोजना चाहते हैं। अनादि काल से ही हमारा उत्साहपूर्वक मिथ्या प्रयास चल रहा है। पर वस्तुओं में लीन होने के कारण हमारा अन्तर केन्द्रित नहीं होता, सत्यता तो यह है कि अपने उपयोग का भी सही उपयोग नहीं कर पाते उसका भी दुरुपयोग कर रहे हैं। सच्चे सुख के आकांक्षियों को स्वयं से ही सर्व अपेक्षाएँ रखनी चाहिए तभी हम बंधनों से मुक्ति पा सकेंगे । पर वस्तु व व्यक्तियों का व्यामोह ही हमसे हमारी उपेक्षा बढ़ा देता है। हमें अपनी उपेक्षा नहीं करनी है - खुद में खुद के खुदा को खोजना है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

81

"बिना दान दिये तुम भिखारी"

एक भिखारी ने किसी सेठ के मकान के सामने खड़े होकर आवाज लगाई, सेठ जी कुछ खाने के लिए मिल जाये, सेठ जी ने कहा - आगे जाओ अभी यहाँ सेठानी नहीं है। भिखारी बोला - मुझे सेठानी नहीं रोटी चाहिए । सेठ बोला - बत्तमीज, नौकर भी नहीं है कोई आदमी भी नहीं है तुझे रोटी कौन दे? भिखारी बोला सेठ जी थोड़ी देर के लिए आप ही आदमी बन जाइये, आप ही धर्म कार्य के लिए स्वयं नौकर बन जाइये । तब सेठ जी क्रोध में आकर बोले - मूर्ख मैं तुम्हें रोटी कैसे दे सकता हूँ मेरे हाथ खाली नहीं है। भिखारी बोला तभी तो आपसे माँगने आया हूँ, खाली हाथ वालों से माँगने से क्या मिलेगा, सेठ जी कृपया मुझ गरीब को क्षमा कर कुछ खाने के लिए दे दो । सेठ जी भिखारी की बात सुनते - सुनते झुंझला गये,बोले सुनता नहीं है बोल दिया न कुछ नहीं है आगे बढ़ । भिखारी बोला सेठ जी यदि ऐसी बात है तो आप भी महल / कोठी से उतरकर नीचे आ जाओ मेरे साथ चलो मैं तुम्हे खिला दूँगा, जो मुझे मिलेगा उसमें से कुछ तुम्हें भी दे दूँगा । महानुभाव ! भिखारी केवल भीख लेने नहीं सीख देने भी आता है। मानों कहता है, मैनें दान नहीं दिया इसलिए आज राजा से भिखारी बन गया बिना दान दिये तुम भिखारी न बनो, दान देते रहो।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

82

''प्राकृतिक स्वरूप को पाने के लिये प्रकृति के साथ जिओ'

जो अपनी संस्कृति के अनुसार जीता है वह सुसंस्कारित, श्रृंगारित, सम्मानीय होता है। सुसंस्कारवान् व्यक्तियों की ही कृतियाँ संस्कृति की मूल है। सुसंस्कृत महानुभाव दुःखों से बचकर सुखों को पाने का अधिकारी है। विकृति में जीने वाला व्यक्ति दुःखों को, दुर्गति को, प्रतिकूलताओं और आपत्ति - विपत्तियों को प्राप्त करता है। विकृत चित्त संस्कृति का उत्पादक, संवाहक, संवर्द्धक व प्रवर्तक नहीं होता। विकृतियाँ व्यक्ति व समाज की छवि को विकृत ही करती हैं। बुराई किसी को अच्छा नहीं बनाती और न ही अच्छाई किसी को बुरा बनाती है किन्तु संसार में ऐसे भी महानुभाव होते हैं जो विकृतियों को छोड़ संस्कार की नाव में बैठकर प्रकृति की गोद में पहुँच गये हैं। प्रकृति में जीने का सम्यक् आनंद तो वही ले सकते हैं जो यथाजात दिगम्बर रूप को धारण कर प्राकृतिक स्थान जंगलों में व नदी के किनारे रहकर आत्म ध्यान में लीन रहते हैं।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

83

''मृत्यु की चिंता क्यों''

महानुभाव ! संसार में जिस किसी प्राणी का भी जन्म हुआ है उसका मरण निश्चित है, जो भी जन्मा था वह मृत्यु को प्राप्त हुआ है, जो भी जन्मेगा वह नियम से मृत्यु को प्राप्त होगा ही। संसार में आज तक ऐसा कोई प्राणी नहीं जो जन्मा किन्तु मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ हो। जब मृत्यु निश्चित है तब व्यक्ति मृत्यु से भयभीत क्यों होता है? दूसरी बात भयभीत होने से मृत्यु किसी को माफ नहीं करती। मृत्यु से भयभीत होने के कारण है - मृत्यु के समय होने वाला दुःख अथवा मृत्यु के समय होने वाली दुर्गति। जो जीवन में अच्छे काम करते हैं वे प्रायः मौत से भयभीत नहीं होते। मौत की चिंता होना अलग है और भयभीत होना अलग। मृत्यु के निश्चित होने से व्यक्ति निश्चिंत हो सकता है किन्तु व्यक्ति को मृत्यु का स्थान व समय ज्ञात नहीं है यदि वह भी ज्ञात हो जाये तो निश्चित हो सकता है मृत्यु अच्छी तरह निराकुलता से हो जायेगी या वेदना के साथ। इस द्वन्द की स्थिति में उसके मन में चिंता पैदा हो जाती है। जब - जब व्यक्ति द्वन्द की स्थिति में पहुँचता है चिन्तित हो जाता है। अतः अच्छे काम करो व निश्चिंत होने की भावना भाओ।

84

''मरण को सुधारना है तो जन्म को सुधारो'

बीज को सुधारने से फल सुधरते हैं, खेत को संभालने से फसल संभल जाती है। दाल, आटा, सब्जी व मसाले ठीक हों तो भोजन अच्छा बनता है। धागे अच्छे हों तो वस्त्र अच्छा बनेगा, मिट्टी अच्छी हो तो मंगल कलश भी ठीक बन जायेगा कच्चा माल अच्छा हो तो वस्तु भी अच्छी बनेगी । दूध अच्छा है तो रबड़ी, मलाई, मावा, दही, मट्ठा भी अच्छा बनेगा । माताएँ अच्छी व संस्कारवान् हो तो भावी पीढ़ी भी अच्छी ही बनेगी । ईख की फसल अच्छी है तो गुड़ भी अच्छा बनेगा । जैसा साधन सामग्री होगी साध्य रूप वस्तु भी वैसी ही बनेगी। बाजरा के आटे से गेहूँ की रोटी न बन सकेगी। हम चाहते हैं कि हमारा मरण अच्छा हो समाधि पूर्वक हो । जब जीवन में समाधि (धर्म ध्यान) को कभी किया नहीं तो मृत्यु के समय समाधि कैसे टिकेगी? अतः यदि हमें अपनी मृत्यु को सुधारना है तो जीवन को सुधारना बहुत जरूरी है। जो अपना जीवन नहीं संभाल पाते वे मृत्यु को या परभव को कैसे संभाल सकते हैं? ग्रन्थि रहित अच्छे धागे से ही अच्छा वस्त्र बन सकता है। जीवन ग्रन्थि रहित, समाधान युक्त, धर्म ध्यान से अनुस्यूत हो । जीवन में आनन्द है तो मृत्यु भी आनंदमयी बन सकती है व अगला भव भी ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

85

''जोड़ने व जुड़ने का अभियान चलायें''

धागे का समूह जब वस्त्र का रूप ले लेता है तब वह किसी प्राणी की गर्मी, सर्दी या इज्जत बचाने में समर्थ हो जाता है। घास के तिनकों का समूह छप्पर बनकर किसी गरीब के रहने के काम आता है। सिड़की की सींको का समूह सूप बनकर अनाज शोधन के काम आता है। लकड़ियों का समूह टोकरी / डालिया / ढकूला बनकर वस्तु को रखने के काम आता है। जीर्ण साड़ियों की धज्जियाँ भी दरी बनकर बिछाने में उपयोगी बन जाती है, गेहूँ की नरइ या काँस के तिनके डालिया बनकर उपयोगी बन जाते हैं। एक - एक ईट जोड़कर महल बन जाता है, एक - एक पुष्प जोड़कर पुष्पहार माला बन जाती है। एक - एक नारियल की जटा या सन, पटसन ले तन्तु रस्सी बनकर मानव जीवन में बहुत काम आती है। बिखरने पर तो रत्न या मोती भी कूड़ा कचड़ा सा दिखता है, इसी तरह जो श्रावक या साधु समाज संगठित है वही धर्म की प्रभावना में या कोई बड़े कार्य करने में समर्थ होती है। एक - एक व्यक्ति तो टूटकर शैतान व हैवान बन जाता है, अतः हम जीवन में सभी को धर्म से जोड़े और स्वयं जुड़ें ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

86

''बहिरंग से नहीं अंतरंग से समृद्धि हो'

जो बाहर की ओर दौड़ रहा है, बाह्य वस्तुओं के संग्रह में संलग्न है, जो अपने अंदर के खालीपन को बाहर से भरना चाहता है वह अज्ञानी पुरुष है। अज्ञानी पुरुष पर वस्तुओं को जोड़कर अमीर बनना चाहता है, जमीर बेचकर अमीर बनना क्या कोई बुद्धिमानी है? बाह्य पर वस्तुओं के संग्रह से आत्मा की कीमत नहीं बढ़ सकती, किन्तु अज्ञानी ऐसा ही करता है। ज्ञानी पुरुष की प्रवृत्ति इसके विपरीत होती है वह बाह्य वस्तुओं का यथाशक्य परित्याग करता चला जाता है।ज्यों - ज्यों वह त्याग की ओर बढ़ता है त्यों - त्यों वह अंतरंग में संतुष्ट होता जाता है, वह अंतरंग के विकारों का परित्याग करता जाता है, वह अपने वैराग्य और त्याग का भी मान नहीं करता, कर्ज मुक्त व्यक्ति की तरह वह विकारमुक्त आत्मसुखी होता जाता है। ज्यों - ज्यों उसके अंतरंग में विशुद्धि वृद्धिंगत होती है त्यों - त्यों उसकी प्रवृत्ति सरल, सहज और विनम्र होती चली जाती है। उसकी विशुद्धि का प्रभाव त्रस व स्थावर प्राणियों पर भी पड़ता है। ज्ञानी पुरुष की संगति में उसके आभा मण्डल के परिवेश में रहने वाले जीव भी विकारों से रिक्त होते चले जाते हैं। संक्षेप में यही समझ लें अज्ञानी अंदर निर्धन बाहर अमीर दिखता है, ज्ञानी बाहर से दिगम्बर / अकिंचन / निर्धन एवं अंदर से सम्पन्न / अमीर व सम्राट होता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

87

''पुण्यात्मा कौन?'

जमीन किसी की, श्रम किसी और ने किया,फसल किसी के भवन में रखी, बिक्री किसी अन्य ने अपनी दुकान से की, खरीदी किसी ने, अन्य ने ग्रहण कर उस अनाज का भोग किया जिसने भोग किया वही पुण्यात्मा है। कुँआ किसी ने खोदा, जमीन किसी की, पानी किसी ने निकाला, पीने वाला पुण्यात्मा है। गाय का पालन किसी ने किया, बछिया का जन्म कहीं अन्यत्र हुआ, दूध किसी अन्य ने दुहा, बाजार में किसी ने किसी दूसरे को बेचा, किसी अन्य ने निकाला उसका भोग किसी अन्य ने किया - भोक्ता पुण्यात्मा है। रत्न किसी की भूमि पर निकला उसे किसी ने खरीदा, बड़े व्यापारी को बेचा जौहरी के यहाँ कारीगर ने तराशा, दुकानदार ने विक्रय किया, किसी कन्या के पिता ने खरीदा, उसको धारण किसी और ने किया, प्रयोक्ता पुण्यात्मा है। कपास कहीं पैदा हुई, रूई किसी ने निकाली, किसी ने उसे धुवा, सूत बनाया, मशीनों से कपड़ा बुनकर बाजार में किसी ने विक्रय किया, किसी ने क्रय किया - उपभोक्ता कोई और रहा - वही पुण्यात्मा है, कहने का आशय है कि वस्तु को प्राप्त करने वाला मात्र पुण्यात्मा नहीं है बल्कि वस्तु का भोग - उपभोग प्रयोगकर्ता है वही पुण्यात्मा है। तुम भी रक्षक नहीं पुण्यात्मा बनो ।

88

''यथा कारण तथा कार्य''

पुरानी कहावत है जो बड़ी सार्थक भी है "जैसा खाओ अन्न वैसा होवे मन, जैसा पीवे पानी वैसी होवे वाणी, जैसी करता संगत वैसी आवे रंगत, जैसा होता खान - पान वैसा बनता खानदान, जैसा करता काम वैसा होता नाम, जैसी चलता चाल वैसा होता हाल, जैसा जपता राम वैसा हो परिणाम" यह ध्रुव सत्य है जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। कार्य विरुद्ध कारण व कारण विरुद्ध कार्य नहीं होते । बेईमानी से ईमानदारी का पुरस्कार कैसे मिलेगा । गेहूँ के आटे से मक्का की रोटी नहीं बनेगी, आम बोने से बादाम की फसल न मिलेगी, नमक के बदले मीठा नहीं मिलेगा। गाली के बदले गीत कोई कैसे सुना सकता है। पाप का फल वरदान या सुख शांति नहीं मिलती, पुण्य का फल दुःख नहीं हो सकता, अधर्म का फल परमात्म दशा की प्राप्ति नहीं हो सकती, अतः वैसे ही कारणों का संयोजन करो जैसे कार्य सम्पन्न करना चाहते हो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

89

''मूर्ख व विद्वान्''

बुद्धिमान् व्यक्ति वह है जो उस कार्य को उस समय कर लेता है जो कार्य जिस समय सम्पन्न हो सकता है तथा जो कार्य जिस समय सम्पन्न नहीं हो सकता उसे उस समय नहीं करता आगे के लिए टाल देता है। किन्तु मूर्ख वह है जो असमय में, जिस कार्य के लिए जो उचित समय नहीं है फिर भी अनुचित समय में कार्य सिद्ध करना चाहे । अनुचित समय में उचित कार्य का प्रारंभ करे । उचित समय में अनुचित कार्यों को प्रारंभ करे । उचित व्यक्तियों के साथ अनुचित व्यवहार व अनुचित व्यक्तियों के साथ उचित व्यवहार करना, अहंकारी या अधर्मी के साथ सम्मानीय व्यवहार तथा साधर्मी पात्रों पूज्य पुरुषों व महापुरुषों के साथ निंदनीय या अपमान अविनय कारक व्यवहार करना ये सब मूर्खता के प्रतीक हैं। बुद्धिमान सुनता अधिक है बोलता कम है, मूर्ख बोलता अधिक है व सुनना नहीं चाहता और न ही किसी की अच्छी बात सुन पाता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

90

''माँ गर्व नहीं त्यागना सीखो''

जिस सद्कार्य को गुरु के आशीर्वाद से, माता - पिता के सानिध्य में पुरु की तरह शुरु किया था उसके निष्ठापन पर गुरु के साथ प्रभु भी अनुभव गोचर होते हैं। गुरु निष्ठा से ही आत्म प्रतिष्ठा सम्भव है। जिसके हृदय में जन्म देने वाले एवं अपने सुखों को त्यागकर पालन - पोषण व सुसंस्कार देने वाले माता - पिता के प्रति कृतज्ञता व सम्मान का भाव नहीं वह व्यक्ति अपना जीवन जैसे तैसे पूरा तो कर लेता है किन्तु आत्म प्रतिष्ठा करने में असमर्थ रहता है। माता - पिता की वात्सल्य युक्त भावनाएँ एवं अपनी संतान के प्रति उसके उज्ज्वल भविष्य के लिए किया गया त्याग अवश्य ही फलीभूत होता है। गुरु का मार्ग दर्शन, आशीर्वाद व सानिध्य खुद के जीवन को गुरुतर व श्रेष्ठ बनाने वाला प्रभु परमात्मा से मिलाने वाला होता है। जिसका अपने माता - पिता, गुरु व प्रभु के प्रति निःस्वार्थ पूर्ण समर्पण है उन्हें तीन लोक की सारभूत समस्त सम्पत्तियाँ स्वतः ही प्राप्त हो जाती हैं। हम माता - पिता, गुरु व प्रभु के चरणों में माँगने के लिए नहीं त्यागने के लिए तत्पर रहें, तब हमें कुछ भी रखने की या माँगने की आवश्यकता नहीं होगी ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

91

''खतरनाक है अहंकार''

कुछ मनीषी विद्वान् ऐसा कहते हैं कि "रतौंधी के रोगी को दिन में दिखता है किन्तु सूर्यास्त होने पर रात्रि में कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता" किन्तु हमारा मानना है कि रतौंधी के रोगी को रात्रि में भले ही दृश्यमान स्पष्ट न दिखे किन्तु वह अदृश्य वस्तुओं को देख सकता है। गंध, स्पर्श, रस व शब्दों का ज्ञान करने के पूर्व उसे अचक्षु दर्शन भी नियम से होता ही है। उसे स्नेह, घृणा, सुख - दुःख, राग - द्वेष, हास - परिहास आदि का भी वेदन तो होता ही है। किन्तु रतौंधी रोग से खतनाक है अहंकार का रोग । इस रोग से पीड़ित व्यक्ति को न दिन में दिखता है न रात में, वह न पौद्गलिक वस्तुओं को देख पाता है न चैतन्य वस्तुओं को तथा धर्म - अधर्म, पुण्य - पाप, राग - द्वेष, स्नेह - घृणा, समर्पण भक्ति, वात्सल्य वासना आदि कुछ भी अनुभव नहीं कर पाता । उसे तो मात्र वही चीज दिखती है जिसका उसे अहंकार है। वह सदैव अपनी श्रेष्ठता की तुलना दूसरों से करता है, अपनी हीनता को वह स्वीकार ही नहीं करता, अहंकार जीवन को बेकार करने वाला है। अतः अहंकार से बचो। रतौंधी रोग का रोगी तो प्रभु भक्ति, गुरु सेवा, माता - पिता का सम्मान साधर्मी को सहयोग, उपकारकों के प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त कर भी देगा किन्तु अहंकारी ऐसा कदापि नहीं कर सकेगा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

92

''चिकनाई में फिसलन''

जहाँ स्नेह होता है वहाँ चिकनाहट होती है, जहाँ चिकनाहट होती है वहाँ पर फिसलने व गिरने का भय होता है, जहाँ भय होता है वहाँ सुख कहाँ? दीपक में पड़ा हुआ तेल जब जलता है तभी वह अंधकार को नष्ट करने में तथा प्रकाश को प्रकट करने में समर्थ होता है। संसार में विद्यमान जितने भी दुःख हैं वे सब स्नेह के कारण ही होते हैं क्योंकि जहाँ तक स्नेह (राग) विद्यमान रहता है वहाँ तक नियम से द्वेष भी रहता है। राग - द्वेष संसार के नियामक हेतु हैं,ये राग - द्वेष ही भव वर्द्धन का कारण है । स्नेह / स्निग्ध / चिकनाई जहाँ होती है उसे दूर करने के लिए बालू या राख का प्रयोग किया जाता है। इतना ही नहीं स्निग्धता / स्नेह से सहित तिल,सरसों, बादाम, मूंगफली, सोयाबीन आदि को घानी में पेला जाता है, जब वह तिलहन निस्निग्ध हो जाते है तब उन्हें घानी में नहीं पेलते ।

महानुभाव! स्नेही प्राणी प्रतिक्षण दुःखी रहता है। सम्पूर्ण स्नेह से रहित वीतरागी / वीतद्वेषी / निर्मोही ही अनन्त सुखी कहलाता है। अतः किसी भी व्यक्ति या वस्तु मे आसक्त मत रहो, कर्त्तव्य निष्ठ बनो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

93

''आदमी, पुरुष, मानव व मनुष्य''

आदमी शब्द का अर्थ है जो इन्द्रियों का दमन करने में समर्थ है, अथवा आदमी शब्द आदम से बना है और आदम शब्द 'आतम' से बना है - आत्म से आतम हुआ । तकार का संस्कृत में दकार भी हो जाता है जैसे - सत्+ आचार = सदाचार, सत् + भाव= सद्भाव, सत् + उपदेश= सदुपदेश इत्यादि अतः आदमी वही है जो आत्मा में लीन रहने वाला है । "पुरुष" शब्द का अर्थ है पुरुषार्थी।पुरुषार्थी वही हो सकता है जो साहसी / उद्यमशील व संकल्पवान् हो अथवा पुरुष वह है जो पुरु या श्रेष्ठ गुणों का भोक्ता है, श्रेष्ठ गुणों का ग्राहक, उत्पादक व संग्रही है।"मानव" शब्द का अर्थ मान का वमन करने वाला । अथवा मान - मर्यादाओं का पालन करने वाला । "मनुष्य" शब्द का अर्थ है मनु की संतान । मनु का अर्थ है विवेकशील अथवा समस्याओं के बीच में समाधान खोजने वाला, सन्मार्ग दर्शक या अग्रगामी पथिक । "नर" शब्द का अर्थ यह भी हो सकता है जिसके समान और कोई न हो अर्थात् न्+ अर (नहीं है जिसके समान कोई अन्य जीव) न देव, न तिर्यंच और न ही नारकी ।

94

''मर्दनं गुण वर्धनं''

"दधि चन्दन ताम्बूले मर्दनं गुण वर्धनम् ।"

इस सुक्ति के अनुसार दधि, चंदन व ताम्बूल मर्दन से गुणों को बढ़ाने वाले होते हैं। दही को जितना भी मथो उतना ही गुणवर्द्धन व शक्तिवर्द्धक होता है। चंदन को जितना घिसो उसकी सुगन्धि विस्तार को प्राप्त होती जाती है। पान को जितना अधिक चबाया जाता है उतना ज्यादा स्वादिष्ट हो जाता है। उसी प्रकार बारह भावना व तत्त्व चिंतन जितना किया जाता है चेतना की मटकी में उतना ही ज्यादा वैराग्य का नवनीत उपलब्ध हो जाता है। वैराग्य का नवनीत ही संयम का घी बन जाता है वही आत्मशांति का मुख्य कारण है। इन्द्रिय संयम के द्वारा या तत्त्व चिंतन के द्वारा जितना आत्मा को घिसा जाता है उतनी अधिक सुगन्धि आत्मा में उपलब्ध होती है। जितना - जितना तप वृद्धिंगत होता है आत्मा में उतनी - उतनी चमक/ निर्मलता वृद्धिंगत हो जाती है। अतः जो आत्मा की शुद्ध दशा के आकांक्षी हैं उन्हें नित्य तत्त्व चिंतन रूपी भोजन ग्रहण करना चाहिए । बिना भोजन के जैसे शरीर शुष्क हो जाता है, जीवित होते हुए भी मृत जैसा हो जाता है उसी प्रकार श्रद्धा, भक्ति, स्वाध्याय, तत्त्व चिंतन, संयम साधना तथा तप - ध्यान के बिना आत्मा भी मृत प्रायः जैसी प्रतिभासित होती है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

95

''स्व स्थान शोभते''

संसार के प्रत्येक पदार्थ की महत्ता स्वकीय स्थान पर ही होती है। अपने स्थान से च्युत होने पर बड़े - बड़े व्यक्ति व पदार्थ भी श्री हीन व हास्यास्पद ही बन जाते हैं। नीतिकार भी कहते हैं "स्याद् हीना न शोभंते - दंता केशा नखा नरा ।" दाँत यदि मुख के बाहर दिखने लगे तो सुन्दर पुरुष भी राक्षस जैसा लगता है। केश (बाल) यदि सिर के अतिरिक्त माथे पर नाक पर हों या टूट जायें तो मल का रूप धारण कर लेते हैं। नख जब तक अंगुलियों के साथ हैं तब तक उनकी सुन्दरता है व टूटने पर अस्थि है - छूते ही स्नान करना चाहिए । मनुष्य भी अपने पद के अनुसार कर्त्तव्यों का पालन व अधिकारों का प्रयोग करता है तब वह प्रशंसनीय, वंदनीय व पूजनीय होता है। अपने पद से च्युत मनुष्य, राजा, योगी, गुरु, शिष्य, सेवक, देव, इन्द्र आदि सभी निंदनीय ही कहलाते हैं। आँख का काजल नाक पर, ओठों की लाली पलकों पर, माथे की बिन्दी गाल पर डलते ही वह सुन्दरी विदूषिका - बहुरूपिया जैसी हास्यास्पद बन जाती है। उत्तरीय वस्त्र अधोअंगो में अधस्तन वस्त्र उत्तरांग में पहनने पर वह सबका हास्यापाद पात्र ही बन जाता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

96

''जीवन को तीर्थ बनाओ''

जहाँ पर गेह व देह से नेह समाप्त हो जाता है, जहाँ अर्थ भी व्यर्थ हो जाता है, राग को आग मान त्याग कर दिया जाता है तथा त्याग वैराग्य को सौभाग्य मान कर राग किया जाता है, जहाँ भय भी भयभीत हो भाग जाता है, जहाँ धर्म की प्रतीति आत्मानुभूति एवं प्राणी की संपत्ति से प्रीति का भाव जाग्रत होता है, जहाँ ज्ञान दान दिया जाता है, तत्त्व से आत्मध्यान कर निजात्मा का गुणगान किया जाता है, दोष त्याग कर आत्मा का सम्मान किया जाता है, जहाँ निज दोष को रोष से तथा रोष को दोष समझ कर नष्ट कर दिया जाता है, जहाँ गुण कोष जीवन धन हो,जहाँ तत्त्वज्ञान के शाश्वत स्वर ही जीवंत कोष है जहाँ सर्वस्व त्याग आत्मा के समस्त वैभव के प्रकृष्ट तोष की भावना भायी जाती है, जहाँ समता संतोष का हेतु हो जीवन का होश ही सुख का सेतु हो, वहाँ किसी प्राणी का जीवन व्यर्थ नहीं तीर्थ होता है न केवल अपने लिये अपितु समस्त भव्य जीवों के लिए भी । क्या आप भी अपने जीवन को ऐसा तीर्थ बनाना चाहते हैं?

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

97

"अधिवक्ता नही न्यायाधीश बनो"

पक्षपाती व्यक्ति अक्षघाती के समान है। पक्ष कितना भी सबल हो यदि एक है तो सुनिश्चित अधूरा है। एक पक्षीय (एक पंख वाला) खग मुक्त आकाश में गमन नहीं कर सकता वह जमीन पर पड़ सकता है। एक पक्षीय (एक पक्ष को मानने वाला) यदि विद्वान है तो अड़ सकता है, मिथ्यात्व के अंधकार में सड़ सकता है, सफलता के शिखर पर चढ़ नहीं सकता । एकाक्षी (काना) नारियल की तरह निष्ठुर ही कहलाता है, लोक व्यवहार में भी उसे अमांगलिक माना जाता है। एक पक्ष स्वीकार करने वाला किसी भी आत्मा का समस्त या सम्यक् हित कदापि नहीं साध सकता अतः दक्ष बनो - द्+ अक्ष अर्थात् अक्ष के दृष्टा बनो, आत्मा का अवलोकन करो, उभय पक्षी दोनों नयों के धारी या दोनों नयनों के धारी दर्शन दोनों चेतनाओं के धारक बनो तभी सत्य का दर्शन संभव है। न्यायाधीश उभय दृष्टा होता है, जबकि अधिवक्ता (वकील) एक पक्ष का समर्थक होता है। यदि चेतना के समस्त वैभव को पाना चाहते हो तो अधिवक्ता (एकाक्षी) नहीं, उभय दृष्टा (उभयाक्षी) न्यायाधीश बनो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

98

''धन तेरस को दान व ध्यान से बनाओ धन्य तेरस''

कहा जाता है कि "कार्तिक वदी त्रयोदशी" के दिन भगवान् महावीर स्वामी ने सम्पूर्ण समवशरण व सर्व बाह्य परिग्रह का त्याग कर दिया था और अनंतज्ञान के प्रकाश में ही अपनी आत्मा में लीन हो गये, चार अघातिया कर्मों से मुक्ति पाने, मोक्ष रूपी रमणी के साथ शादी रचाने । यह जरूरी भी था,जबकि लौकिक सुन्दरी को पाने हेतु भी धन व्यय करना ही पड़ता है, लौकिक प्रकाश भी करते ही हैं, तब क्या मुक्ति सुन्दरी यूँ ही मिल जायेगी, उसे पाने के लिए ध्यान भी उसी में केन्द्रित रखना नितांत आवश्यक है। अतः महावीर भगवान् के अनुयायियों को धन - वैभव का जरूरत मंदों के लिए, सत्पात्रों का धर्म ध्यान बढ़ाने के लिए, जिन शासन की प्रभावना के लिए, माँ जिनवाणी की विस्तार व शोभा बढ़ाने के लिए व स्वयं की मुक्ति सुन्दरी को पाने के लिए त्याग / दान करना चाहिए। किंतु ऐसा कम ही देखने में आता है, अधिकांश लोग तो इसे धन तेरस कहकर धन इकट्ठा करने के पुरुषार्थ में ही लगे रहते हैं। यदि आप वास्तव में भगवान् महावीर स्वामी के अनुयायी हैं तो धन त्याग करके आत्म ध्यान लगायें और अपने जीवन को ही नहीं इस तेरस को भी वीर प्रभु की तरह धन्य तेरस मनायें ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

99

''कोप भवन अलग क्यों''

पहले राजा - महाराजाओं के महलों में एक कोप भवन बनाया जाता था, जब कभी रानी - महारानी आदि कुपित होती थीं तो कोप भवन में चली जाती जिससे सारा महल कुपित या कोप पूर्ण नहीं होता । भवन में भी सभी स्थान प्रायः नियत ही होते हैं जैसे पूजा गृह, शयन कक्ष, स्नान घर, रसोई, अध्ययन कक्ष, माता - पिता कक्ष, दम्पत्ति कक्ष, बच्चों का कक्ष, शौचालय इत्यादि । इससे घर में सब व्यवस्था व्यवस्थित रहती हैं। यूँ तो भवन में सब कक्षों का अलग - अलग महत्व है, फिर भी घर में शौचालय अलग ही बनाया जाता है, चाहे रसोई शयन कक्ष बना लें या पूजा घर न भी हो तो कहीं भी बैठकर पूजा कर ले किन्तु गन्दगी का त्याग नियत स्थान पर हो अन्यथा सारा घर ही गन्दा हो जायेगा। इसी प्रकार घर में पूजा गृह के साथ एक निंदा गृह या बुराई गृह अलग से हो जिससे भवन में हर जगह बैठकर बुराई न की जा सके और न ही हर समय। यदि बुराई करने का समय व स्थान नियत हो जाये तो संभव है बुराई करने वालों की संख्या कम हो जायेगी और बुराईयों की संख्याओं में भी भारी गिरावट आयेगी ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

100

''भारतीय परिवार - मानो रत्नों का हार''

भारत वर्ष एक ऐसा देश है जहाँ विभिन्न वर्ण, जाति व धर्म के मानने वाले निवास करते हैं, जिनकी भाषा वेश - भूषा व खान - पान भी अलग - अलग है। रीति - रिवाज भी पृथक - पृथक है, भले ही सभी परम्पराओं का अपने - अपने तरीके से पोषण भी करते है किन्तु फिर भी धर्म के प्रति सबके मन में श्रद्धा का भाव है प्रभु के प्रति भक्ति है, गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण है, माता - पिता के प्रति कृतज्ञता का भाव है, आपस में सबके प्रति प्रेम वात्सल्य भाईचारा है, प्राणी मात्र के प्रति करुणा का भाव है, सभी आपस में मिल जुल कर अभिन्न मित्रों की तरह रहते हैं, तब ऐसा लगता है जैसे किसी चमन में अनेक प्रकार के पुष्प खिल कर अपनी सौरभ / सुगन्धि लुटा रहे हैं अथवा किसी होटल पर रखी मिठाईयों के नाम ही अलग - अलग किन्तु मिठास एक ही है, अथवा उनकी (भारतीय जनों की) शोभा गुलदस्ता या नाना प्रकार के पुष्पों से युक्त पुष्प माला जैसी लगती है अथवा नाना प्रकार के मणि - मुक्ता रत्न सोने के तार में जुड़े हुए हृदय पर आरोहित हार की तरह होती है। शायद इसलिए ही भारतीय जन हृदय धारणीय - आराधनीय माने जाते हैं विश्व नागरिकों के मध्य में । इसलिए ही भारत देश सब देशों में गुरु के समान महिमा मण्डित है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

101

''अतिथि के समक्ष''

वर्ष में तीन बार पर्यूषण पर्व आते हैं और तीन बार ही आते हैं नंदीश्वर पर्व / अष्टाह्निका पर्व, तथा माह में चार पर्व आते है अष्टमी पर्व दो व दो चतुर्दशी पर्व तथा प्रत्येक दिन में चार संधि पर्व / संधिकाल आते हैं। ये पर्व हमारे जीवन में विशेष उत्साह, उमंग व आनंद प्रदान करने हेतु आते हैं। पर्वों के दिनों में आप प्रातः काल से ही स्नान आदि करके नूतन वस्त्रादि धारण करते हैं, आपस में गले मिलते है, बुराईयों तथा दोषों का परिहार करते हैं। आबाल वृद्ध सभी विकारी भावों का गन्दगी या संक्लेशता के कारणों का परित्याग करते हैं। भौतिक पर्व भौतिकता की वृद्धि करते हैं, भौतिक संसाधन व उपकरणों में संवर्द्धक के जनक होते हैं तो आध्यात्मिक व शाश्वत पर्व आध्यात्मिक निधि के सृजक हैं शाश्वत सम्पत्ति के कारक हैं एवं आत्म साधना के हेतु हैं। पर्व रूपी अतिथि के सामने हम शांति से रहें विनम्रता से रहें, किसी से कुछ न कहे,सबकी सब कुछ सहें और कर्मों को दहें । तभी हमारा पर्व (प= पापों का त्याग, र = रहस्यों का उद्घाटन, व = वात्सल्य भावों से युक्त) मनाना सार्थक होगा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

102

''वस्तु नहीं कोण बदलो''

एक व्यक्ति ने कमरे के मध्य में लटकी हुई किसी वस्तु का चित्र दस कोनों से या स्थानों (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ईशान, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य,ऊपर व नीचे) से लिया । सभी चित्र अलग आकृति के थे, उसने अपने मनोनुकूल एक चित्र का चयन कर लिया शेष नौ चित्र भी भविष्य के लिए अपने पास रख लिये । वे नौ चित्र उसी वस्तु के है यद्यपि चित्र अनपेक्षित हैं, वे दशायें भी उस वस्तु में है। यदि हमें वस्तु या उसका चित्र एक कोने से अच्छा नहीं लगता तो कोई बात नहीं दूसरे कोने से देखना शुरु कर दें । संभव है आज जिस कोने से देखना अच्छा नहीं लगता हो कल उसी कोनें से देखना अच्छा लगे इसलिए कोई दृश्य मिथ्या नहीं है। कई बार हम दृश्यों को बदलना चाहते हैं तो कभी दृष्टि को । हमारा कहना है कि एक बार अपने कोने को बदलने का प्रयास करो पुरुषार्थ करो - दृष्टि का कोना बदलते ही दृश्मान पदार्थ का रूप बदल जाता है। एक स्थान पर खड़े होकर भी हम दाँये, बाँये, ऊपर, नीचे व सामने पाँच प्रकार की स्थिति देख सकते हैं। जब एक स्थान से ही पाँच प्रकार के दृश्य दिख सकते हैं तब १० कोनों से तो ५० प्रकार के भी दिख सकेंगे । संसार में अनंत कोण हैं अतः अपनी दृष्टि का कोण बदलो वस्तु नहीं, क्योंकि वस्तु का बदलना वस्तु पर आधारित है कोण का बदला आप पर निर्भर है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

103

''मुर्दे कफन नहीं बदलते''

संसार में जितने भी डॉक्टर, वैद्य व हकीम हैं वे सिर्फ बीमार व्यक्तियों का ही इलाज कर सकते हैं। जिन्हें अपनी बीमारियों से निजात पाना है तथा जिन्होंने अपने को बीमार मान लिया है, जान लिया है, वह रोग मुक्त हो सकता है, किन्तु जो रोग से मर चुका है उसे संसार का कोई वैद्य, डॉक्टर निरोगी नहीं कर सकता । ठीक इसी तरह जो भव्य जीव श्रद्धावान् होकर सच्चे देव - शास्त्र गुरु के चरणों में आता है वह हमेशा के लिए पूर्ण शुद्ध हो जाता है, परम्परा से शिव स्वरूप / सिद्ध परमेष्ठी हो जाता है। जो कभी बीमार नहीं होता उन्हें कभी जन्म - जरा - मृत्यु जैसा कोई रोग नहीं होता, किन्तु जो अभव्य है अर्थात् मुर्दा है दूरानुदूर भव्य की तरह से अंतिम श्वास को छोड़ने वाला है या छोड़ रहा है उसे अब कौन बचा सकता है? जीवंत व्यक्ति ही अपनी दशा को सुधार सकते हैं मुर्दा नहीं । मुर्दा तो सदैव उसी दशा में पड़े रहते हैं, सड़ते रहते हैं, दूसरों को रोगी बनाने का कारण बनते हैं, वे अपना कफन कभी नहीं बदल सकते । अतः आप सभी भव्य जीव - जिसके अंदर धर्म व धर्मात्मा के प्रति लगाव है तथा सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के प्रति निस्वार्थ भावना युक्त सच्चा समर्पण है वे अपने रोगों का जल्दी उपचार करा लें फिर क्लीनिक बंद होने का समय होने वाला है, डॉक्टर, वैद्य व हकीम के भी जाने का समय हो रहा है तथा आपकी बीमारी का भी क्या भरोसा कब वह कितना भयंकर रूप धारण कर ले, अतः जल्दी करो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

104 "जो खुद के लिए चाहते हैं"

संसार में कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो अपने दुःखों से दुःखी हैं, तो कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो दूसरों से दुःखी हैं तथा संसार में ऐसे व्यक्तियों की भी कमी नहीं है जो दूसरों की सुख - सुविधाओं को देखकर दुःखी हैं। जो अपने दुःखों से दुःखी हैं वे प्रभु भक्ति व गुरु सेवा करके अपने पाप कर्मों को नष्ट कर सुखी हो सकते हैं। जो दूसरों के दुःखों से दुःखी हैं वे संसारी प्राणियों के प्रति भावना भा कर सातिशय पुण्य का संयच कर तीर्थंकर प्रकृति आदि पुण्य प्रकृतियों का बंध कर सुखी हो सकते हैं, किन्तु जो दूसरों के सुखों से दुःखी हो रहे हैं उनके दुःखों को नष्ट करने का उपाय समझ में नहीं आता । सामने वाले का सुख उसके पुण्योदय पर आधारित है, वह अपने पुण्य के फल को पा सुखी है उसके सुख को कम नहीं किया जा सकता है।अपनी बुराईयों को, बुरी आदतों को, बुरी भावना का त्याग किया जा सकता है। स्वयं की बुरी भावनाओं को अच्छी भावनाओं में बदलकर सुखी हुआ जा सकता है। मेरा आपसे इतना कहना है कि आप सातिशय पुण्य का अर्जन कर सुखी बनिये । दूसरों के दुःखों के सहभागी बनकर उनका दुःख सहिए तथा उसके सुखी होने की भावना भा कर अपने सुख को स्थायी बनाईये, किन्तु कभी भी भूलकर किसी के सुख से ईर्ष्या मत कीजिए, किसी के लिए दुःखों की कामना मत करो, क्योंकि जो दूसरों के लिए दुःख माँगता है खुद उसकी झोली में दुःख के बादल बरस जाते हैं, अतः दूसरों के लिए वही माँगो जो खुद के लिए चाहते हो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

105

"न देर है न अंधेर"

सुना जाता है कि पहले मानव को अच्छे या बुरे कर्मों का फल उसी भव में मिल जाता था, किन्तु न जाने आज क्या बात हो गयी वैसा आज देखने को नहीं आता । आज बड़े - बड़े धर्मात्मा, त्यागी, तपस्वी साधक को भी रोग से पीड़ित या प्रतिकूलताओं का शिकार होते देखा जाता है तथा कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि कामी, लोभी, मानी, धर्मभ्रष्ट, समाज के कलंक स्वरूप पापी जीव भी सुख भोगते हुए दिखाई देते हैं, तब कमजोर श्रद्धा वाले व्यक्तियों के मन में शंका होने लगती है कि यह क्या? भोगी - सुखी, योगी - दुःखी व वासना ग्रस्त मस्ती में है व उपासना ग्रस्त परेशान है इसका क्या कारण है? इसका एक कारण यह भी है कि पूर्व काल में मानवों की आयु हजारों - लाखों वर्षों की हुआ करती थी, उससे पहले करोड़ों - अरबों वर्षों की हुआ करती थी, उसके पूर्व खरबों - खरबों व उससे पूर्व नील व पद्म वर्षों की भी होती थी तब व्यक्ति उसी भव में अपने किए पुण्य - पाप का फल प्राप्त कर लेता था। अपने बोये कर्म रूपी बीजों का फल प्राप्त कर लेता था किन्तु आज मानव की उम्र सौ या सवा सौ से ज्यादा नहीं दिखती, मनुष्यों की औसत आयु लगभग ६० वर्ष की रह गई तब वह अपने कर्मों का फल कैसे पा सकता है। आज बोये बीजों का फल आज तो नहीं मिल सकता समय की इन्तजारी भी तो जरूरी है। क्या गर्भ काल समय ९ माह से ९ घंटे हो सकता है? नहीं हो सकता या सप्ताह के सात दिन सात मिनट में निकल सकते हैं या सूर्य को एक चक्कर लगाने में ४८ घंटे नहीं ४८ सैकेण्ड लगें? नहीं, पूरा काल ही लगता है वैसे ही कर्म का फल पाने में पूरा समय लगता है। लोग कहते है देर है अंधेर नहीं । किन्तु हमारा मानना है कि कर्म फल पाने में न देरी है न अंधेरी । विश्वास रखो तुम्हें अपने कर्म का फल अवश्य मिलेगा, जैसा बोया है वैसा ही मिलेगा -पूरा विश्वास रखो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

106 "नारी हरि की जननी भी"

नारी पुरुष की वासनाओं को जाग्रत करने में नहीं प्रभु उपासना की भावना को प्रकट करने में निमित्त बने, वह मात्र भोग सामग्री बन कर न रहे अपितु योग की कारण बने, वह मात्र जीव विराधना का मूलभूत न बने संयम साधना की आधार भूत बने, नारी केवल भौतिक संसाधकों की याचिका न बने अपितु आध्यात्मिक निधि की सूत्रधार बने, नारी केवल वंश वृद्धि का कारण न बने वह जीवन में गुण वृद्धि का साधन भी बने। नारी केवल तन पोषण या तन शोषण का हेतु न बने वह चेतन के पोषण व कर्म शोषण का निमित्त बने । नारी संसार भूत न हो वह जिनशासन में सारभूत बनकर दिखाये । नारी - नारी की दुश्मन न बने अपितु नारी - नारी की संरक्षिका बने, तब नारी वरदान स्वरूप कहलायेगी । उस नारी के रहने से महल भी मंदिर सरीखा लगेगा, वहाँ ममता की मात्र कीचड़ नही समता की सुगन्धि भी बहेगी तब वहाँ मोह का अंधकार नहीं सद्विवेक का प्रकाश भी होगा । वहाँ कलह व कलुषता की कड़वाहट नहीं आत्मीयता की मिठास भी होगी तब वहाँ नारकीय जीवन की दुःखद पीड़ाओं का अनुभव नही, स्वर्ग जैसे मधुर सुखों की प्रतीति भी होगी उस समय यह धरा भी स्वर्ग की धरा से उत्तम प्रतिभासित होगी । उस समय नारी के चरण पूजन के लिए स्वर्ग के देवता भी तरसेंगे, मेघ आनंदित होकर सुसमय पर समीचीन रूप से बरसेंगे, पृथ्वी के समस्त परमाणु ही मानो हर्षेंगे । हे नारी ! तुम ऐसा ही रूप धारण करो जिससे तुम्हारा कोई अरि न बने । हाँ यह भी ध्यान रखना जीवन में तुम भी किसी की अरि मत बनना तब तुम निश्चित ही हरि की जननी बन सकोगी । हरि शब्द के भी अनेक अर्थ है, यहाँ सम्यक् अर्थों को ही ग्रहण करना ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

107

"पढ़ो, बढ़ो,चढ़ो आत्मा से जुड़ो"

जब भी हम किसी मन्दिर की सीढ़ियाँ चढ़ते हैं या किसी पहाड़ी तीर्थ क्षेत्र की वन्दना करते हैं, तब वंदना करते समय मोह कुछ कम होता जाता है। सुख, शांति, आनन्द, हर्षोल्लास व विशुद्धि में वृद्धि होती है, तनाव, संक्लेशता, कलह, विकार व वासनाएँ घट जाती है या कृश होने लगती हैं। प्रभु भक्ति में मन लगने लगता है, हमारा सोया हुआ भाग्य भी जगने लगता है। माया के भागने से प्रभु बिम्ब की छाया जागने लगती है। क्रोध विगलित होता है, आत्म बोध प्रज्वलित होने लगता है। वासना मिटने लगती है उपासना प्रकट होने लगती है। भोग व रोग भागने लगते हैं, योग से आत्म रस रिसने लगते है। मन विकृतियों से हट प्रकृति में रमण करने लगता है, इसलिए सीढ़ियों वाले मंदिरों की व पर्वत वाले क्षेत्रों की वंदना में अवश्य जाना चाहिए। सच्चे शास्त्रों को पढ़ने से, धर्म क्षेत्र में आगे बढ़ने से, कर्मों से लड़ने से, गुणों के रत्न आत्मा में जड़ने से तथा गुणस्थान चढ़ने से आत्मा का वैभव निकट आने लगता है। अनादि कालीन दारिद्र छूट जाता है इसलिए पढ़ो - बढ़ो, चढ़ो व आत्मा से जुड़ो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

108

''क्षितीश्वर वही जो क्षिति सा क्षमाशील''

क्षिति व क्षितिज का ईश्वर वही है जो क्षिति जैसा क्षमाशील व क्षितिज जैसा उदार हृदय, राग - शून्य बन सकता है। विकार शून्यता का पाठ क्षितिज बड़ी अच्छी तरह सिखाता है। निःसंगता, निरभिमानता, सरलता, निःशब्दता, निर्मलता, निर्विकारता, स्थिरता, अलिप्तता, सर्वअवगाहन आदि गुण क्षितिज से ग्रहण किये जा सकते हैं। क्षिति से क्षमाशील, समताभाव, उदारता, विशालता, सर्वशरणदात्रीपना, खुशहालपना, अंतरंग की हरितमा, उपकारिता व कृतज्ञता आदि गुणों की प्रेरणा प्राप्त होती है। पृथ्वी पर दाना बोने से वह सहस्रगुणा करके लौटा देती है उसी प्रकार जिस प्राणी को तुम प्रेम, वात्सल्य व स्नेह प्रदान करोगे तो वह प्राणी भी सहस्रगुणा लौटाना चाहेगा, यथाशक्य लौटाता भी है। हे मानव ! यदि जीवन में क्षितिश्वर बनना है तो क्षिति व क्षितिज को अपनी जननी व जनक बना कर खुद उनका आत्मज या देहज बन जिससे उनके गुण संस्कार पाकर दोनों का स्वामी बन सके।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

109 ''मात्र लिखो मत अंदर में लखो भी''

नमक के डिब्बे पर शक्कर / बूरा या लाल मिर्ची के डिब्बे पर मुनक्का लिख देने से न तो नमक - शक्कर / बूरा बनता है और न ही वह लाल मिर्च मुनक्का बनने वाली है तथा शक्कर की बोरी या मिश्री के पैकेट पर नमक लिखने से वह नमक नहीं बन जायेगा और चंदन चूरा के पैकेट पर बबूल बुरादा लिखने से वह बबूल बुरादा नहीं बन जायेगा। वस्तु वही रहेगी जो जिस रूप में है। आप इस बात को अच्छी तरह जानते हो, छाछ से भरी मटकी पर दूध लिखने से उस मटकी की छाछ दूध नहीं हो जायेगी, फिर आप अपनी तिजोरी में अंदर व बाहर लिखते तो हो "शुभ लाभ" किन्तु तिजोरी को "अशुभ लाभ" से भरने का निरन्तर दुस्साहस करते हो। बेइमानी की कमाई से भरी तिजोरी शुभ रूप नहीं हो सकती और न ही वह लाभ शुभ कहलायेगा, यद्यपि जो शुभ रूप नहीं हो उसे लाभ ही नहीं कहना चाहिए वह हानि से भी ज्यादा बद्तर है। हानि होना खतरनाक नहीं जितना अशुभ लाभ खतरनाक होता है। खाली तिजोरी प्रसन्नता का कारण भले ही न हो किन्तु अनर्थ का भी कारण नहीं है। अशुभ के माध्यम से हुआ लाभ नियम से रोगवर्द्धक, भयोत्पादक, धर्मविनाशक, ज्ञान विध्वंसक तथा व्रत नियम, संयम का संहारक होता है। अशुभ का आशय है दुर्गति, दुःख, कलह, संक्लेशता, बैर, वैमनस्यता, क्रोध, अहंकार, छल - कपट, तृष्णा, लालच मोह , विषय - वासना तथा विकारी भावों का संवर्द्धन। अशुभ लाभ को लाभ मत कहो वह तो हानि है हानि। यहाँ शुभ के द्वारा हानि हो भी जाये तो भी वह लाभ ही होता है। मात्र लिखने से काम नहीं चलेगा, अंदर में लखों भी अशुभ को छोड़ शुभ को ग्रहण करो।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

110

''ऐसी कोई मशीन नहीं''

महानुभाव ! गाय, भैंस, बकरी, गधी,ऊँटनी, सिंहनी, हथिनी आदि मादायें चारा - भूसा, खली, दाना खाती हैं और दूध देती हैं, क्या कारण है कि शिशु के गर्भ में आते ही मादा के स्तनों में दूध आ जाता है? कन्या के स्तनों में नहीं तथा शिशु के बड़े होने पर भी माँ के स्तनों में फिर दूध नहीं आता जब बालक बड़ा होकर भोजन आदि करने लग जाता है। कारण स्पष्ट है माताओं (मादाओं) का अपने शिशुओं के प्रति जो स्नेह, वात्सल्य, प्रेम, करुणा भाव या ममत्व परिणाम होता है उसके परिणाम स्वरूप ही दूध का निर्माण होता है। जितना ममत्व भाव व वात्सल्य का भाव होता है उतना ज्यादा दूध बनता है, उसका पौष्टिक आहार दूध बनता चला जाता है। महापुरुषों में भी प्राणी मात्र के प्रति दया, करुणा, रहम, स्नेह व वात्सल्य का भाव होता है इसलिए तीर्थंकर आदि महापुरुषों का रक्त भी धवल (सफेद, दूध के वर्ण की तरह) होता है। संसार में ऐसी कोई मशीन नहीं जो घास, चारे, भूसा, खली, बिरोले, दाने, दाल, रोटी, सब्जी - भाजी को दूध बना दे। आज इस भौतिक व वैज्ञानिक युग में मानव सभी कार्य मशीन द्वारा ही करना चाहता है, वह आध्यात्मिक विद्या / शक्ति के महल को समझ नहीं रहा इसलिए इतना अधिक विकास करने पर भी दुःखी है। उसे आज लगने लगा है कि वह विनाश के ढेर पर खड़ा है। बंधुओं भौतिकता केवल धन या साधन दे सकती है, धर्म की संयम साधना नहीं । अभी भी समय है अपनी मूलभूत संस्कृति को जानो, आत्मा की शक्ति को पहचानो । स्नेह, प्रेम, दया, करुणा, रहम व वात्सल्य आदि भावों को अपनी आत्मा में प्रकट करो ये पैसे देकर बाजार में नहीं मिलेंगे । समय के रहते सचेत हो जाना ही बुद्धिमानी है। चूको मत जागो ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

111

''अशन व आसन में आसक्ति न हो''

महानुभाव ! वर्तमान काल में अधिकांश मानव अशन (भोजन) में या आसन (कुर्सी, पद, अधिकारी पाने में) आसक्त हैं। आसक्ति के साथ शुद्ध शाकाहार करना भी पाप है फिर आमिष भोजन या निशि भोजन या अभक्ष्य भोजन तो बिना आसक्ति के ग्रहण करना शक्य ही नहीं है, वह तो महापाप ही कहलायेगा । जिस प्रकार अशन की आसक्ति महापाप रूप है उसी प्रकार आसन की भी है। इससे बचने के लिए अनशन का प्रयोग करना चाहिए इससे अशन की आसक्ति भी घटेगी व तन भी निरोगी बनेगा, वह कायिक तप भी हो जायेगा जो पाप कर्म को ध्वस्त करने में समर्थ कारण बन जायेगा । पद का त्याग, व्रतों का पालन आत्मानुशासन, संयमसाधना, कर्त्तव्यपालन हो सकेगा। शिथिलता आने पर कर्त्तव्यों का पालन न होने पर, उद्देश्य पूर्ति में बाधा आने पर, अपना या उस पद का कार्य पूरा होने पर, अधिकारों के दुरुपयोग की संभावना होने पर आसन का स्वतः ही बुद्धिपूर्वक त्याग कर देना चाहिए। जो बुद्धिपूर्वक त्याग करके त्याग धर्म को अपने जीवन में स्थान देते हैं वे जीवन में ज्येष्ठ या श्रेष्ठ पद को प्राप्त करने के अधिकारी बन जाते हैं। तीर्थंकर आदि महापुरुष भी समवशरण में अपने कमलासन से चार अंगुल अधर होते हैं अतः समवशरण आदि विभूति का भी त्याग कर देते हैं। राजाओं की भी एक निर्मल, प्रशस्त, सर्वमान्य, भारतीय संस्कृति की सभ्यादरणीय परम्परा राज्य छोड़कर दीक्षा या सन्यास की ही रही है। राज्य गद्दी का त्याग न करना दुर्गति का हेतु बन जाता है। त्यागी हमेशा उच्च गति का ही अधिकारी हुआ है, होता है और हमेशा रहेगा भी ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि